स्वांतः दुखाय

व्यंग्य निबन्ध

स्वयं प्रकाश

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

1986



आवरण :
प्रकाश आर्टिस्ट

मूल्य :
बीस रुपये मात्र

प्रकाशक :
कृष्णा ब्रदर्स
महात्मा गांधी मार्ग
अजमेर–305001

मुद्रक :
वैदिक यन्त्रालय
केसरगंज, अजमेर

अपने एवर्सेट गुरु मार्क ट्वेन
ऑर प्रेजेन्ट गुरु परसाईजी
को

दीवाले की वाइफ़ के बारे में

पिछले दिनों एक विदेशन से भेंट हो गयी। वह टूरिस्ट थी और सरे-आम टूरिया रही थी। ख़ैर इसमें मुझे क्या एतराज़ हो सकता है। वह मुझसे टकराई, तो उल्टे मैं तो खुश था कि मैं उसे टकराया जाने लायक लगा।

उसने मुझसे पूछा—यह दीवाली क्या होती है ?

मैंने कहा—दीवाली दीवाले की वाइफ होती है।

दीवाले का अर्थ वह जानती थी। उसकी संस्कृति का निकल चुका था। पांच-छह बार पलकें झपकाकर उसने पूछा—इसे कैसे मनाते हैं ?

मैंने कहा—भद्रे ! इसे तीन तरह से मनाते हैं। एक—अपनी दूकान या गोदाम में अपने ही हाथों से आग लगाकर, दूसरे—अपनी ही पार्टी के नेता के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाकर और तीसरे—अपने दोस्तों को सड़े-गले पदार्थ बांटकर।

उसने पूछा—लोग अपनी दूकान या गोदाम में आग क्यों लगाते हैं ? क्या वे योगी हैं ? क्या उन्हें वैराग्य हो गया है ?

मैंने कहा—ललितलतिके ! यह लक्ष्मी उपासना की एक पद्धति है। इसके अंतर्गत पहले लोग पचास हजार का सामान ख़रीदते हैं और दूकान या गोदाम में डाल देते हैं। फिर उसमें से पैंतालीस हजार का सामान

इधर-उधर करके बाकी पाच हजार में आग लगा देते है और फिर रोते-रोते, नाक छिनकते-छिनकते बीमा कम्पनी की छाती पर चढ जाते है।

उसने कहा—वण्डरफुल ! हिन्दुस्तानी बहुत होशियार होते है। आप चाय पीजिए।

मैंने कहा—थैंक्यू। मैं आमलेट भी खाऊगा।

उसने कहा—आप दीवाली के बारे मे और बताइये।

मैंने कहा—बताता हू सुनयने ! इस उपासना पद्धति का एक शास्त्रीय रूप भी है जिसे विरले ही नरपुगव साध पाते हैं। वे पूछ को मूछ की तरह और मूछ को पूछ की तरह मरोड़ते रहते हैं और फालतू समय मे अपनी खटारा बंदूकों की सफाई करते रहते है। वे जीपायमान होकर गाव जाते है, वहा किसी मोहल्ले की लड़कियों-महिलाओं से सामूहिक बलात्कार करते है और मोहल्ले के पुरुषों को इकट्ठा कर उन्हें पेड़ से बांधकर समारोहपूर्वक जिन्दा जला देते हैं। इस उपासना पद्धति को 'हरिजन दहन' कहते है।

विदेशन की आखें चकित भैंस की-सी हो गयी। वह बोली—हाउ ब्यूट ! यह तो यज्ञ परंपरा का विकास लगता है। आप और आमलेट लीजिए।

मैंने कहा—नही, आमलेट नही, चिकन मंगा दीजिए। इधर मेरा पेट ठीक नहीं रहता। हल्का खाना लू तो ही ठीक रहेगा।

विदेशन उत्तेजित लग रही थी, और इस महान् देश की महान् सास्कृतिक लपड़धोंधों से प्रभावित भी। चिकन का ऑर्डर दे, मेरी आखो मे आखें डाल, तन्मय हो, बोली—हा ?

मैंने कहा—मुक्तकेशी ! इस उपासना पद्धति का एक घरेलू संस्करण भी इधर काफी प्रचलन मे आ गया है। इसके अतर्गत सास-ससुर और पतिदेव मिल कर षोडशी बहू को गरम चिमटे से, लाठी से, साइकिल की चेन से पिटाई करते हैं, उस पर मिट्टी का तेल डाल देते हैं, आग लगा देते हैं और छाती पीटते हुए सारा दहेज खा जाते है।

वह फुदकते हुए बोली—ओह वंडरफुल ! ओह इण्डिया ! ऐसा त्योहार तो मैंने दुनिया में कहीं नहीं देखा।

अब वह सरासर उत्तेजित थी। उत्तेजना ही उसके जीवन का चरम लक्ष्य था। मैं साधू बनने को तैयार होता तो वह मुझे लेकर ऋषिकेश भाग जाती। बोली—एक चिकन और चलेगा न ?

मैंने उंगलियां चाटते हुए कहा—हां। आइसक्रीम का भी बोल दो। तुम्हारा कैमरा मुझे बहुत अच्छा लग रहा है। जाते समय देती जाना।

उसने कहा—तुम मेरी जान ले लो। पर दीवाली के बारे में और बताओ।

मैंने कहा—बात मत टालो। जान तो यहां बहुत सस्ती है। कैमरे महंगे हैं। तुम अच्छी श्रोता पकड़ में आ गयी हो, और मेरे डॉक्टर ने भी मुझे सुबह-शाम खाना खाने के बाद एक-एक घंटा भाषण बता रखा है।

उसने कहा—वन मिनिट ! डॉक्टर ने तुम्हे ऐसा क्यों बता रखा है ?

मैंने कहा—चपलचित्ते ! ऐसा करने से पेट साफ रहता है, दस्त खुलासा आता है और वायु अधिक नहीं बनती। इसे 'लैक्चरोपैथी' कहते है।

वह बोली—यहां के डॉक्टर ऐसा इलाज भी जानते है ?

मैंने कहा—अभी तुमने देखा ही क्या है ? मेरे साथ अकादमी की तरफ चलो, मुझे उधर काम भी है, ऐसे हकीमों से मिलवाऊंगा जो बरसों से नीम के नीचे बैठे... कतिपय दिमागों की खुजली का इलाज कर रहे हैं। या दिल्ली चलो, वहां का एक लाडला सम्पादक कदम्ब की डाल पर बैठा ज्योतिष से भारतवासियों की समस्याओं का समाधान करता है। या बिहार चलो....वहां के मुख्यमंत्री एक बाबा की लात अपने सिर पर रखवाते हैं और उनके सारे दुख-दर्द दूर हो जाते है। तुमने....

आइसक्रीम ! टेबल पर पटकी गयी। बैरा घूर रहा था। मैं चुप हो गया।

विदेशन ने सिगरेट जलाकर सोफ़े की पीठ से अपनी पीठ सटायी और बोली—दूसरी पद्धति क्या है ?

मैंने कहा—बताता हूं अधीरप्राणे ! दीवाली के दूसरे दिन सब एक दूसरे से मिलने जाते है। चोर थानेदार से गले मिलता है, नेता स्मगलर से। इसे हिन्दी में 'रामा-श्यामा' और अंग्रेजी में 'फ्लोर क्रॉसिंग' कहते हैं। इसके अंतर्गत अटलविहारी चरणसिंह की बैलगाड़ी में चढ़ जाते हैं और मुस्लिम लीग कम्यूनिस्टों के स्पूतनिक में। समाजवादी बहुगुणा की दोस्ती कट्टरतावादी इमाम से हो जाती है और करजिया की हाजी मस्तान से। इधर के एमेले उधर जाकर मेजें थपथपाते हैं, उधर के एमपी इधर आकर खुर्राटे भरते हैं। अभिनेता राजनीति से गले मिलने लगते हैं, अफसर कलाकारों से।

—इसमें अविश्वास वाली बात कहां से आयी ? विदेशन ने पूछा।

डकार लेकर मैंने कहा—अन्नपूर्णे ! तुमने द्यूतक्रीड़ा का नाम अवश्य सुना होगा। कई लोग इसे धूर्तक्रीड़ा भी कहते हैं। बेटा बाप से रुपया पाइन्ट जीत सकता है, बहू सास से। इस खेल में जो पुरुषोत्तम अपनी पत्नी तक को दांव पर लगा देते हैं और दूसरों द्वारा उसी भरी सभा में नंगा किया जाना सभ्यतापूर्वक देखते रहते हैं, वे 'धर्मराज' कहलाते हैं।

—लेकिन अविश्वास....

—अविश्वास मत करो गौरांगा ! सुनो कि कोई तो होगा जो इस खेल के लिए सबको पैसा बांटता होगा ! उसे पार्टी का नेता कहते हैं। उसी से पैसा लेकर, उसी को सर आंखों बैठाकर उसी के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाना गोरधन उठाना कहलाता है। यह भी लक्ष्मीपूजा यानी दीवाली का एक रूप है।

—लेकिन लोग ऐसा क्यों करते हैं ?

—क्योंकि हारे या हटाये हुए नेता गवर्नर पद को प्राप्त होते हैं।

—कितना कल्चर है तुम्हारे देश में ! उसने शून्य में देखते हुए कहा। मानो अफसोस कर रही हो कि यह सब उसके देश में क्यों नहीं है। मुझे लगा वह भारत से इस कल्चर के इम्पोर्ट की संभावना पर विचार कर रही है।

—और वह तीसरी पद्धति क्या है ? उसने सर खुजाते हुए पूछा ।

मैंने कहा—सुभगे ! तीसरी पद्धति के प्रवर्तक हमारे पूज्य गुरु, पूज्यपाद श्री अमरीकानन्दजी महाराज है। क्योंकि वह सभ्य है, इसलिए उनका सबसे बड़ा उद्योग 'पटाखा उद्योग' है। पटाखों की निरंतर नयी उन्नत किस्में निकलती जा रही है। इसलिए पुराने पटाखे—जो बेकार हो चुके होते हैं—वह कृपापूर्वक अपने दूजे भाइयों को 'आसान' किस्तों-शर्तों पर उधार दे देते है और उन्हें निहायत सभ्यतापूर्वक अपने पडोसियों से लड़ा देते है। या अपने गुप्त शान्तिदूत भेजकर वहां की सरकारें गिरा देते हैं। या स्वयं जाते है, दूजे भाई के माथे पर रक्त का तिलक लगाकर, उसके हाथ मे बमगोले पकड़ा, उसकी शक्कर, चावल, गेहूं, लोहा और तेल वसूलकर उसकी आजादी से ब्याह कर लेते हैं। इस 'पिशाच विवाह' से जो नाजायज औलाद पैदा होती है, उसे 'कठपुतली सरकार' कहते है जिसे कालान्तर में धूमधामपूर्वक डूबना पड़ता है।....

विदेशन की आंखों से चिन्गारियां छूटने लगी। कैमरा कांख मे दबोचती हुई वह बोली—मैं समझ गयी। तुम कम्यूनिस्ट हो। सारे हिन्दुस्तानी गन्दे कम्यूनिस्ट ! हमारे यहा तुम्हें ठीक ही 'काले कुत्ते' कहा जाता है।

और चल पड़ी।

—अरे सुनो तो ! चड़िके....मैंने पुकारा।

लेकिन वह रुकी नही।

□

अब क्या बतायें साहब ! कैमरा तो नही ही मिला, चिकनादि का बिल भी जेब से भरना पडा।

हो गयी ना दीवाले की वाइफ ॥ □□

एक महान् खेल की शान में

क्रिकेट एक महान् खेल है। कबड्डी महान् खेल नही है। खो-खो, मलोलिया चौघोड़ी, मासा बडावनी, मारदड़ी, गुल्ली-डंडा आदि जितने भी देसी खेल है, या रहे है, उनमे से कोई महान् नही है। महानता की उम्मीद-वारी में जो अन्य श्रेष्ठ खेल हैं वे है—टेनिस, बिलियर्ड्स, गोल्फ़, बेडमिंटन, स्नूकर आदि। फुटबॉल एक निकृष्ट खेल है। उसमे बाईस खिलाड़ी, दो रेफ्री और चार लाइनमेन सबके सब कंगलो की तरह एक ही गेंद के पीछे पड़े रहते है। हॉकी का जिक्र इसलिए नही करूंगा कि किसी के जख्मो पर नमक नही छिड़कना चाहिए।

तो क्रिकेट एक महान् खेल है। महान् है इसकी अनिश्चितताएं, महान् है इसके अम्पायरो के निर्णय, महान् है इसके कमेन्टेटर और महान् है इसकी बोरियत। सफेद झक कपड़ो में जाओ, और पांच दिन बाद भी वे सफेद झक ही रहे। बगुले के पंख जैसे। ऐसा और किसी खेल मे नही हो सकता। और खेलों मे तो निकर पहननी पड़ती है, जिसमें से आधी से ज्यादा टांगें बाहर दिखाई देती रहती है। क्रिकेट मे ऐसा नही है। बल्कि उसके दो खिलाड़ी तो लबादे पहने रहते है।

ग्रांखों-देखा हाल सुनाती है। टेलिविजन सुबह से शाम तक घर-घर जिसकी श्रदाएं परोसता है। पत्रिकाएं जिस पर विशेषांक निकालती हैं। समाचार-पत्रों में सम्पादक को पत्र लिखकर जिस पर पाठक लम्बी बहसें करते हैं और देश की संसद जिसकी हार-जीत पर सवाल-जवाब करती है।

क्रिकेट का खेल मैदान में होता है और उसे दो खिलाड़ी खेलते हैं। लेकिन बाकी बारह इस भ्रम में रहते हैं कि वे भी खेल रहे हैं। गेंदबाज हर गेंद फेंकने से पहले और बाद में बाकी खिलाड़ियों से गुप्त मंत्रणा करता है। बल्लेबाज हर गेंद को टुक करने के बाद आस-पास की जमीन पर घुरमट चलाने का अभ्यास करता है। कभी-कभी दोनों बल्लेबाज बीच पिच मंत्रणा करते हैं। वहां भी वे घुरमट चलाते रहते हैं। बल्लेबाज सर से पांव तक रक्षा कवचों से ढका होता है। हेलमेट से लेकर पैंट तक। हेलमेट का प्रचलन इसी दशक में हुआ है। क्योंकि हेलमेट के बिना बल्लेबाज की दशा हेमलेट जैसी हो जाया करती थी। कई खिलाड़ी पतलून-कमीज के भीतर भी कई प्लास्टर, पैड आदि पहने रहते हैं। कुछ फील्डर भी आज-कल हेलमेट लगाने लगे हैं। मानो मौका मिलते ही बल्लेबाज से बल्ला छीनकर बैटिंग करने लगेंगे। इन सब सुरक्षा साधनों के बावजूद घायल होने, बेहोश होने, लहूलुहान होने और हड्डियां चटखने का सिलसिला क्रिकेट में चलता ही रहता है। यहां तक कि क्रिकेट का एकाध खिलाड़ी तो बेचारा हमेशा 'कवर' में टांगें फैलाये खड़ा रहता है। अच्छे गेंदबाज का निशाना विकेट नहीं, अपितु बल्लेबाज की टांगें या उसका सिर होता है। ऐसी गेंदों को लेग ब्रेक यानी टांगतोड़ और हेडब्रेक यानी सिरफोड़ कहा जाता है। हेडब्रेक को बाउन्सर कहा जाता है, पर मेरे द्वारा दिया गया शब्द ज्यादा सटीक, सचित्र और सचोट है, अतः इसे मेरा इस महान् खेल को विनम्र योगदान माना जाये। इस सारी युद्धोपम गपड़चौथ का कारण वह कम्बख्त गेंद है जो कबीट से भी ज्यादा सख्त होती है और जिसे दस खिलाड़ी बारी-बारी से थूक लगाकर अपनी सफेद पतलूनों पर जगह-

बेजगह रगडते रहते हैं। समझ मे नहीं आता कि इस तरह खिलाडियों को राणा सांगा बनाने की बजाय नरम गेंद का प्रयोग क्यों नहीं कर लिया जाता !

लेकिन जैसा कि मैंने ऊपर कहा, और शायद नीचे भी कहूंगा, क्रिकेट एक महान् खेल है। इसके अपने अंधविश्वास है, जिन्हें परंपरा कहा जाता है। इसमे गरीब खिलाडियों के लिए काफी मौके है। बढ़िया केरियर है। महाराजा रणजीतसिंह, महाराजा विजयनगरम, महाराजा होलकर, महाराजा गायकवाड, पटौदी के नवाब, महाराजा डूंगरपुर, आदि गरीब लोगों ने इस खेल को देशभक्ति की भावना से लबालब भरकर अपनाया। बाद में जैसे मजबूरन राजकपूर, देवानन्द, राजेन्द्र कुमार, सुनीलदत्त आदि के सपूतों को फिल्म में हीरो बनने की तकलीफ उठानी पडी, वैसे ही इन माहवान के सपूतों को भी असहाय होकर क्रिकेटर बन जाना पडा। कई बार खेल के दौरान, जिसे लाखों-करोडों लोग देखते या सुनते हैं—इनकी यह असहायता प्रकट भी हो जाती है। लोगों को इन पर गुस्सा आता है, मुझे तरस। क्योंकि यदि भारतवर्ष एक सामंतवादी राष्ट्र न होता, तो नेता के बेटों को नेता, अभिनेता के बेटों को अभिनेता और क्रिकेटरो के बेटों को क्रिकेटर क्यो बनना पडता ?

क्रिकेट के खेल की एक सिफत और है। इसे पांच वर्ष की आयु से भी खेलना शुरू किया जा सकता है। देश के हर शहर की हर गली मे इसके चलते-फिरते—नाक पोछते—निकर उचकाते प्रमाण देखे जा सकते है। इन हजारों-लाखों होनहार नॉयडों, सोबरों, ब्रेडमैनो के बावजूद हर संकट की घडी में—यानी अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा के समय, हमारे चयनकर्ताओं के लिए यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि इनमे से किन ग्यारह को खिलाया जाये। क्योंकि एक-दो को छोड़कर सब एक से बढकर एक होते है।

क्रिकेट एक महान् खेल है। लेकिन उससे भी महान् है उसका अंग्रेजी

देखा हाल। सब समझदार इस बात पर एकमत हैं कि इन असदेवसिंघों, सुरेश सरैयाओं और सुशील दोषियों का आदि पुरुष संजय था। जो महाभारत की एक-एक अदा, एक-एक त्यौरी, एक-एक लचक का हाल धृतराष्ट्र को सुनाया करता था। ये कमेन्ट्रीकार वाइडबॉल या नो बॉल को बहुत अच्छी गेंद बताते है और आसान कैच उछालनेवाले शॉट को *'कलाई का सुन्दर उपयोग'*। *उनका सारा ध्यान इस बात पर रहता है* कि वे प्रति मिनट कितने शब्द बोल सकते हैं, फिर भले ही यॉर्कर पर हुक शॉट लग रहा हो या कवर में उछला कैच मिडऑन बाउण्ड्री पर पकड़ा जा रहा हो। एक कमेन्टेटर हैं, जिन्हें विश्वनाथ की बल्लेबाजी कविता जैसी लगती है, चाहे वह दो अंकों तक भी न पहुंच पायें, दूसरे यह बताना नहीं भूलते कि वेदी के पटके का रंग कैसा है और तेरह की संख्या पर कौन कब आउट हुआ। एक और है जो याद दिलाते है कि अपना जो गेंदबाज गेंद फेंकने जा रहा है, उसके पीछे अपार जनसमूह का पूरा समर्थन है। मानो वैसे आउट नहीं हुआ तो जनसमूह उसे मतदान द्वारा आउट करा देगा। सभी बीच-बीच में खिलाड़ियों की गलतियां निकालते रहते है और उन्हें तरह-तरह के सुझाव देते रहते हैं, जिन्हें सुनकर लगता है, इससे तो अच्छा हो, ये खुद ही जाकर खेल लें।

जिन दिनों रेडियो पर क्रिकेट की कमेन्ट्री आती है, सारे देश के दफ्तरों, कारखानों, स्कूलों, कॉलिजों में कर्मठता-अनुशासन-लगन और दूरदृष्टि का वातावरण बना रहता है। इस 'आंखों देखा हाल' को कान लगाकर सुननेवाले न सिर्फ कालान्तर में बढ़िया खिलाड़ी बनते हैं, बल्कि उनका सामान्यज्ञान भी असाधारण हो जाता है। वे यह तो नहीं जानते कि वेस्टइंडीज नामक देश कहाँ है, और वह कोई देश भी है या और कुछ, पर वे यह अच्छी तरह जानते है कि सत्तावन-अट्ठावन में किंग्जटाउन में जब महाशय गैरी सोबर्स ने पाकिस्तान के खिलाफ तिहरा शतक मारा था तो उसकी उम्र मात्र इक्कीस साल थी। वे यह तो नहीं जानते कि चामनामेन या गुगली क्या होती है, पर वे आपको महाशय ब्रेडमैन के

शतकों का पूरा रेकॉर्ड गया के पण्डों की तरह सुना सकते हैं। उन्हें यह तो नहीं मालूम कि सिलीमिडॉन का क्या मतलब या फ्लिक करना क्या होता है लेकिन वे अमुक के शून्य पर आउट हो जाने या तमुक को टीम में न लिये जाने पर किसी को भी अधिकारपूर्वक लताड सकते हैं।

यदि अब भी यह सिद्ध नहीं हो गया हो कि क्रिकेट एक महान् खेल है, तो मैं शास्त्रों का सहारा लूंगा। क्योंकि फिर आप कुछ नहीं कर सकते। भगवान् कृष्ण से बड़ा कोच या मैनेजर आज तक इतिहास पैदा नहीं कर सका। भूगोल, नागरिकशास्त्र आदि ने कोशिश ही नहीं की। कौरवों ने पाण्डवों से वर्षों तक फील्डिंग करवाई। और उसके बाद भी पिच पर डटे रहे। नाबाद। और फिर कृष्ण को महाभारत मैनेज करना पड़ा। पाण्डवों की गलती सिर्फ इतनी थी कि वे टॉस हार गये थे। खैर, तो महाभारत हुआ जिसके बाद पाण्डव रिटायर्ड हर्ट होकर नेफा की तरफ चले गये। कृष्ण की कोचिंग का रहस्य क्या था? यही कि कर्म किये जा, फल की चिन्ता मत कर। अब बल्लेबाज बल्ला घुमाने का कर्म करता है, गेंद चाहे उसे नजर ही न आ रही हो। पाँच-दस सशक्त प्रयासों के बाद या तो उसकी गिल्लियाँ उड़ जाती है या वह खुद विकेट पर गिर पड़ता है। दोनों स्थितियों में अम्पायर नामक अप्रिय जीव आसमान की तरफ उंगली उठा देता है। और बल्लेबाज सिर झुकाए लंच खाने पवैलियन में चला आता है। इसी प्रकार गेंदबाज गेंद को फेंकता जाता है, फेंकता जाता है, निष्काम, फल की चिन्ता किये बगैर और दो-ढाई दिन तक यह तपस्या करने पर फलस्वरूप उसे एकाध विकेट भी मिल ही जाता है।

काश! जीवन के हर क्षेत्र में इस देश ने गीता का यह सूत्र पूरी तरह रट न लिया होता। □□

थेंक्यू मेकाले

राष्ट्रताऊ मेकाले का नाम स्वतन्त्र भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा। स्वतन्त्र भारत का इतिहास जब छपेगा, प्रेसवाले को बोलकर उस नाम की स्याही में सोने के वर्क पीसकर मिला दिये जायेंगे। स्वर्णाक्षरों मे नाम लिखने का यही तरीका मैं सोच सका हू।

पर इतिहास मे नाम चाहे जिस रंग में हो, भारतवासियों के दिलों पर उनका नाम स्थायी रूप से गुदा हुआ है। एक ऐसे रंग के अक्षरों में जो दिखाई तो नही देता पर तन-मन-आत्मा सबको अपने रग मे रग देता है।

मेकाले का अवदान क्या था? वह लॉर्ड था। उसने हमेशा लॉर्डोचित आचरण किया और हमे आई. पी. सी. दी। अपराधों के वर्गीकरण-विश्लेषण और दंडविधान का पूरा कायदा और सलीका। और उसने हमे अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली दी। साढे चार फुटी आजाद कौम के मास प्रोडक्शन का कल्चर। एक ट्रेडीशन दी उसने। एक सिस्टम। एक फोरसाइट के साथ। वरना कैसे हमारी गाड़ी चलती? सिर्फ बैकलाइट थी इसमे। हेडलाइट तो मेकाले इंगलैंड से बनवाकर लाये।

मेकाले न होते तो हम आज कहाँ होते ? एक ओर तो हमारे बेचारे अपराधियों को पता ही नहीं चल पाता कि वे इस दफा किस दफा के तहत अन्दर जा रहे हैं और अगली दफा किस दफा के तहत वहाँ से दफा हो रहे हैं। दूसरी ओर न्यायपालिका चक्कर में पड़ जाती और हमेशा सिर खुजाती नजर आती (खुद के) कि किसी ने किसी की गरदन पर चाकू रेत दिया या कोई किसी का खीसा या नाक ले उड़ा तो ये जुर्म कैसे हुआ ? वही पंच परमेश्वरी कर रहे होते ! है कि नहीं ?

और अंग्रेजी ? अंग्रेजी नहीं होती तो यह देश क्या एक पिछड़ा हुआ देश नहीं रहता ? अंग्रेजी न होती तो क्या हमारा प्यारा भारत एक जाहिल, उजड्ड, खड़ूस, ढब्बू, टेपा, डपोरशंख, आलूवड़ा और भुच्चड़ देश नहीं रह जाता ? क्या इसीलिए हमारे नेताओं ने खून-पसीना आदि बहाया था ? क्या इसीलिए भगतसिंह—चन्द्रशेखर आदि शहीद हुए थे कि एक अविकसित, देहाती, देसी, पिछड़ी हुई भाषा को हमारी राष्ट्रभाषा बना दिया जाये ? सोचिये, ऐसा होता तो क्या हमारे मुख पर कालिख न पुत जाती ? दुनिया के सभ्य देश क्या सोचते हमारे बारे में ? हमारे नेता-मंत्री और अधिकारी जब स्पेन, जापान, हॉलैण्ड, फ्रान्स, इटली, जर्मनी, रूस या चीन जाते तो वहाँ के नेताओं से किस भाषा में बात करते ? हिन्दी में ? धरती शर्म से फट नहीं जाती ? आसमान लज्जा से टूट नहीं गिरता ? लेकिन नहीं। हम अपने राष्ट्रताऊ के दिखाए रास्ते पर ही चलते रहे और हमने वही किया जो एक सभ्य समाज को करना चाहिए। आज जिस तरह रूस की राष्ट्रभाषा अंग्रेजी, चीन की राष्ट्रभाषा अंग्रेजी, जापान की राष्ट्रभाषा अंग्रेजी और फ्रान्स की राष्ट्रभाषा अंग्रेजी है, उसी तरह हमारी राष्ट्रभाषा भी अंग्रेजी है। यह वह भाषा है, जिसे हमारे यहाँ सिर्फ अट्ठानवे प्रतिशत लोगों को छोड़कर बाकी सब जानते हैं और 'भली प्रकार' लिख-पढ़ और बोल सकते हैं। हमारे अधिकांश समाचार-पत्र, सरकारी काम, संसदीय कार्यवाही, न्यायिक फैसले, उच्च शिक्षा, व्यापारिक कामकाज, योजनानिर्माण और भारी

गपड़-शपड़ इसी भाषा में होती है। अंग्रेजी के अखबार अच्छे होते हैं, क्योंकि बड़ी-बड़ी कम्पनियों के सारे विज्ञापन उन्हीं में होते हैं। अंग्रेजी की किताबें ज्यादा अच्छी होती हैं क्योंकि वे महगी नही होती और उन्हे हर कोई खरीद सकता है। अंग्रेजी की पत्रिकाएं अच्छी होती है, क्योंकि उनका कागज बहुत चिकना होता है और तस्वीरें भी। अंग्रेजी के स्कूलों को कॉन्वेन्ट और हिन्दी के स्कूलों को 'पाठशाला' या 'विद्यालय' कहते हैं। कॉन्वेन्ट की यूनीफॉर्म बहुत अच्छी होती हैं जो छात्रों को मुफ्त दी जाती हैं। उनमें फीस भी बहुत मामूली होती है। गरीबी हटाने, मच्छर भगाने और निरक्षरता दूर करने पर विचार भी अंग्रेजी में ज्यादा अच्छा होता है। अंग्रेजी में सपने भी बहुत अच्छे आते हैं। अंग्रेजी की गालियां भी बड़ी संगीतमय और फूहड़ता भी बड़ी नटखट होती है। इस महान् भाषा को, हमारी महान् राष्ट्रभाषा अंग्रेजी को बारम्बार नमन है।

यह हर्ष का विषय है कि हमारे सारे बड़े नेता, अधिकारी, व्यापारी, वैज्ञानिक, उद्योगपति और कलाकार अपने घरों में भी इसी भाषा का प्रयोग करते हैं और अपने बच्चों को भी इसी पितृभाषा में तुतलाना सिखाते हैं। अभी पिछले दिनों एक फिल्म तारिका ने सरे-आम स्वीकार किया कि वह हिन्दी नही जानती। इससे हमारा गौरव बढा। वह फिर भी हिन्दी फिल्मों में काम करती है। वह मजबूर है। अंग्रेजी फिल्में यहां नही बनती। हम उनकी पीडा समझते हैं। अंग्रेजीवालों का दुख दुखी करता है और सबको साजता है। कभी-कभी हमारे राष्ट्रपति भी हिन्दी नहीं जानते हैं। अगर वह हिन्दी में बोलते तो लोग उन्हें कम पढा-लिखा समझते। चूंकि अंग्रेजीवालों की संख्या दो प्रतिशत है और देश की सारी सत्ता, सारी सम्पदा, योजना, विकास, सभ्यता, सुरुचि, कला, संस्कृति सब उन्हीं के लिए है और उन्हीं की बदौलत है, अतः हमारी कोशिश होनी चाहिए कि शेष अट्ठानवे प्रतिशत के लिए एक स्वस्थ प्रतियोगिता का वातावरण पैदा करें या उन्हें उनके हाल पर छोड़ दें। वैसे भी अट्ठानवे प्रतिशत कोई खास बड़ा प्रतिशत नही होता।

और उसमें जो बीच के भाई-बहन हैं—उन्हें भाई-बहन मैं केवल शालीनतावश कह रहा हूं—वे भी इस महान् भाषा को सीखने के लिए कमर कसकर जुटे हुए हैं। उनके घरों, दफ्तरों, दूकानों में इस कमरतोड़ प्रयत्न को कभी भी देखा जा सकता है। या घोड़े के मुंह से सुना जा सकता है। पति के 'लीवर फ्रेण्ड' आये हैं, पत्नी 'ट्रक' में चाय ले जा रही है और उसे 'सेक्स' के साथ परोस रही है। बच्चे ने ड्राइंगरूम में 'बाथरूम' कर दिया है। उनकी 'मेरिज की 'बर्थडे' है इसलिए वे 'मेटरनिटी शो' में 'एक नई पहेली' देखने का कार्यक्रम बना रहे हैं। दफ्तर से छुट्टी लेनी जरूरी था और वह भी अंग्रेजी में अर्जी लिखकर, इसलिए उन्होंने साफ लिख दिया....सर, आय एम सफिंग फॉम माय मेरेज बर्डे आदि आदि। लेकिन पिक्चर को वह 'क्लीयरली' नहीं देख पाये क्योंकि घर से 'टेस्टिकल्स' लाना भूल गये थे। लेकिन फिर भी अपने जीवन की उस 'हिस्टीरिकल' घटना की बर्डे पर उन्होंने एक 'रेस्पेक्टेड' और 'कॉन्फिस्केटेड' होटल में ले जाकर पत्नी को 'गरमकुत्ता' और बेबी को 'टूटी फूटी' खिलायी है, जो दोनों ने चाट-चाट कर खायी है।

और क्या चाहिए?

सोचिए, राष्ट्रताऊ मेकाले की आत्मा कितनी प्रसन्न हो रही होगी यह सब देखकर! और खैर उसकी आत्मा को तो मारिये गोली। असल मुद्दा यह है कि देश की विशाल दो प्रतिशत जनता प्रसन्न है या नहीं। है। क्योंकि राष्ट्रभाषा अंग्रेजी के चलते शेष अट्ठानबे प्रतिशत न शासकीय सेवा में आ पायेंगे न प्रशासन में, न शक्ति में, न सत्ता में। इस भाषा के चलते दो प्रतिशतियों का भविष्य सौ प्रतिशत सेफ है। यही मुद्दे की बात है। यही बिन्दु लटता है।

राष्ट्रताऊ! हम तुम्हें दिल से थेंक्यूते हैं। □□

अर्थ के अर्थ का अर्थ

गालिब का एक शेर है--

दर्द मिन्नतकशे दवा न हुआ।
मैं न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ ।।

मैंने शेर सुनाकर भ्राता से कहा कि इसके दो अर्थ हैं। भ्राता बोले, जानता हूं। एक वह जो वाकई है और दूसरा वह जो तू बतायेगा। मैं हंस पड़ा, जब कि बात रोने की थी। ऐसा अक्सर होता है। रोने की बात पर लोग हंस पड़ते हैं। मंत्रीजी कहते हैं आगामी योजना में इतने अस्पताल खुलवाये जायेंगे। लोग तालियां बजाते हैं। जबकि ताली तब बजती जब वे कहते कि आगामी योजना में इतने अस्पताल बंद कर दिये जायेंगे। संसद में घोषणा होती है, अमुक देश हमें इतने करोड़ का कर्ज देने पर सहमत हो गया है। सदस्य मेजें थपथपाते हैं। रोने की बात पर भी हंसना, शर्म की बात पर भी हंसना। मोटे आदमी के फिसल पड़ने पर हंसना और कुत्ते की दुम में पटाखा बांधकर उसकी बदहवासी पर हंसना। अजीब मानसिकता है। लेकिन इसका भी एक मनोविज्ञान है। कोई नहीं चाहता कि उस पर लोग हंसें। किसी ने ठीक कहा है— तुम हंसोगे तो दुनिया हंसेगी, और तुम रोओगे, तब भी दुनिया हंसेगी।

बहरहाल, मेरा इशारा शब्दों के सही अर्थ की ओर है। अब देखा जाये तो अर्थ के भी दो अर्थ हैं और इसे अंग्रेजी में लिखा जाये तो शायद तीन भी। लेकिन मुझे यह लगता है कि हर पांच-दस साल में शब्द अपने अर्थ बदल लेते हैं। जैसे हमारी आर्थिक व्यवस्था अपनी प्राथमिकताएँ या वित्त मंत्रालय अपनी पूँजी निवेश नीति। अब शब्द अर्थ बदल लेते हैं तो शब्दों का तो कुछ नहीं जाता, आफ़त अध्यापकों की होती है, जो पढ़े-लिखे कितने ही हों, अर्थशास्त्री नहीं होते।

बचपन की बात है। सूरदास का एक पद पढ़ाया जा रहा था। अन्तिम पंक्ति थी—'सूरदास कहं बिहंसि जसोदा ले उर कंठ लगायो।' मास्साब का इसरार था कि सारे पद का अर्थ वह बता ही चुके हैं, इस पंक्ति में वैसे भी है ही क्या, लिहाजा जब तक वे मेज से अपने दोनों पैर उठवायें, उन्हें नीचे उतरवायें और फिर उन्हें जूता नामक पदार्थ में डालें, कोई छात्र ही इसका अर्थ बता दे। आपको यह जानकर हर्ष होगा कि जिस छात्र ने उस पंक्ति का अर्थ बताया वह मैं था और जो अर्थ बताया वह यूं था—'कि इतना कहते ही जसोदा ने हंसते हुए सूरदास को गले से लगा लिया।'

भ्राता तब मुझसे दो वर्ष सीनियर थे। हम दोनों राजा बेटों की तरह खेल के समय पढ़ाई की बातें और पढ़ाई के समय भी पढ़ाई की ही बातें किया करते थे। अतः एक दिन की बात है कि खेल के मैदान पर मैंने भ्राता से पूछा—

चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय॥

बताइये इस दोहे का क्या अर्थ है?

पहले तो भ्राता ने मुझे और दोहे को सीरियसली लिया ही नहीं। फिर मुझे घूरा, फिर पश्चिमाकाश में एक काल्पनिक ब्लैकबोर्ड पर नजर गड़ाकर दोहा लिखा, या शायद पढ़ा, या शायद लिखकर पढ़ा, फिर उसे

घूरा और फिर बोले—पहली बात तो यह है कि यह दोहा नहीं, शेर है। और शेर उस दोहे को कहते हैं जिसमें शायर का नाम जरूर हो जो कि इस शेर में भी है—पाटन। तो पाटन नाम के शायर की एक चक्की भी चलती है। क्योंकि शायरी से किसी का पेट नहीं भरता। तो पाटन शायर कहते हैं कि हे कबीरदास ! चक्की से जरा दूर हटकर खड़े रहो। हाथ-पाव आ जायेगा तो रोओगे। क्योंकि चक्की में जब वह चलती हो 'नयोय' नामक कीड़े के सिवा आज तक कोई साबुत नहीं बचा है।

कबीर के दोहे का यह अर्थ सुनकर मैं धन्य हो गया और फिर मैंने कई दिन भ्राता से किसी दोहे या शेर या चारपाई का अर्थ नहीं पूछा।

किन्तु वे बताते रहे। वे मेरा जनरल नॉलिज बढ़ाना और बढ़ाते रहना अपना भ्रातोचित कर्त्तव्य मानते थे।

उन्होंने मुझे बताया कि कोचीन चीन का एक प्रदेश है और वेस्ट-मिनिस्टर एवे उसे कहते हैं जिसमें ठीक काम न करनेवाले मिनिस्टरों को जिन्दा गाड़ दिया जाता है। रेडियम की खोज जुगनू के डिसेक्शन से हुई थी और कंचनजघा में रहनेवाले सभी स्त्री-पुरुषों की जांघें सोने जैसी होती हैं। गुलामवंश के सारे बादशाह अपनी बेगमों के गुलाम हुआ करते थे और बेगम उनको कहते थे जिन्हें कोई गम नहीं होता था। विद्या की अर्थी निकालनेवाले को विद्यार्थी कहते हैं और नाखुदा का मतलब जो खुदा को नहीं मानता—यानी नास्तिक। भ्राता एक लोकप्रिय छात्र थे और स्कूल के दादा की फर्माइश पर इन्होंने उसे एक दोहा भी लिखकर दिया था जो मुझे आज तक याद है। कि—

> कापी करता जानकर तू क्या देखे मोय।
> एक्जाम हो जान दे, देख लेऊंगा तोय॥

तब तक हम थोड़े बड़े हो चुके थे और हमारा आचरण राजाबेटे की बजाय राजकुमारों जैसा होता जा रहा था जिसे कालान्तर में रियाया जैसा हो जाना था। हम भारतीय संस्कृति के घोर और परम पावन

प्रतीक हिन्दी सिनेमा में रुचि लेने लगे थे, और हालांकि देख नहीं पाते थे, मनाही थी, पर देवानन्द की तरह वालों के फुग्गे बनाने और राजकपूर के पतलून की तरह अपनी नेकर के पाँयचे मोड़ने की कोशिश जरूर करते थे। उन दिनों एक गीत बहुत प्रसिद्धि पा रहा था—जरा सामने तो आ ओ छलिये। जो 'लाल रेडियोज' के परपराते गला बैठे लाउडस्पीकर पर रात-दिन बजता रहता था और 'जरा सामने तो आके चलिए।' सुनाई आता था।

इसकी व्याख्या भ्राता ने इस तरह की—देवानन्द (उस समय हमारी कल्पना में हर फिल्म का हीरो या तो देवानन्द होता था, या राजकपूर) लड़की देखने आया है। उसे शक है कि लड़की लंगड़ी है। या उसके पाँव में कोई डिफेक्ट है। तो कैसे पूछे? तो गाना शुरू कर देता है (गाते हुए) के जरा सामने तो आके चलिएऽऽ! है न ठीक बात?

ऐसी गपड़-शपड़ तब तक होती रही जब तक मैंने उर्दू सीखने का निर्णय नहीं कर लिया। 'छलके तेरी आँखों से शराब और ज्यादा' को भ्राता इस तरह गाते—'छलके तेरी आँखों से शराब और आदाब!' 'चश्मेबद्दूर' के उनके भाष्य रोज़ बदलते थे। कभी 'चश्मे पे धूल' कभी 'चश्मे भोत दूर' कभी 'चश्मा रख दूं' कभी 'चश्मे पे थू' क्योंकि बात 'तेरी प्यारी-प्यारी आखों को किसी की नजर न लगने' की चल रही थी। फिर साहिर का एक खूबसूरत गाना आया, जिसकी एक खूबसूरत पंक्ति इस प्रकार थी—'मरने का सलीका आते ही जीने का शऊर आ जाता है।' इसकी ऐसी-तैसी भ्राता ने इस तरह की कि—'मरने का खलीफ़ा आते ही जीने का शकूरा जाता है।' जिन्हें सुनकर मेरी समझ में नहीं आता कि क्या पीटूं? अपना सिर या भ्राता का सिर?

लेकिन जब तक मैं उर्दू सीख पाया और गीतों-गजलों का सौन्दर्य समझ पाने काबिल हुआ, वैसे गीत ही आने बन्द हो गये। फ़िल्मों से और काफ़ी हद तक जीवन से भी कविता का, गीत का आनन्द ही गायब हो

गया। बैठ जा, बैठ गयी, खड़ी हो जा, खड़ी हो गयी या तू तू तू तू मेरा, मैं मै मैं मैं तेरी....इसमे उर्दू क्या किसी भी भाषा को जानने की क्या जरूरत है। मैं तब इस नतीजे पर पहुंचा कि बड़ी से बड़ी बेवकूफी की बात जो कही नहीं जा सकती, गायी खूब मजे से जा सकती है। और लोकप्रिय भी हो सकती है।

फिर और बाद मे मुझे यह लगने लगा कि कविता मे आये दुरूह शब्दों के अर्थ बताये जा सकते हैं, कविता का अर्थ तो बताया ही नही जा सकता। कविता को तो बस पढ़ा-सुना-समझा और छका जा सकता है। अर्थ करने के चक्कर मे तो उसका सौन्दर्य ही नष्ट हो जाएगा। मानो फूल का मजा लेने के लिए कोई उसकी पत्ती-पत्ती नोंच दे और उसके पराग-पुकेसर आदि का विश्लेषण शुरू कर दे। हमारे बचपन की शिक्षा ने प्रसाद-पत-निराला-बच्चन की कितनी ही कविताओं की इसी तरह हमारे सामने हत्या की। और स्कूलों-कॉलेजो मे यही सिलसिला शायद अब भी जारी है। बाधो न नाव इस ठाव बधु! या स्नेह निर्झर बह गया है, ठूठ-सा तन रह गया है या छाया मत छूना मन, होगा दुःख दूना मन! आखिर कोई कैसे इनका शब्दार्थ, भावार्थ या कैसा भी अर्थ लिख या बता सकता है?

लेकिन भ्राता! भ्राता ऊंची चीज है। अब वह मजे के लिए, फन के लिए, ठिठोली के लिए शब्दो के मौलिक, चुटीले और ढीठ अर्थ मुझे बताने लगे। मसलन उन्होंने मुझे बताया कि ब्रह्मचारी का मतलब बंदूक बनानेवाला और अंकल का मतलब चाचा-ताऊ से लेकर तांगेवाला, ड्रायवर और चपरासी तक कुछ भी हो सकता है। 'लायब्रेरी' का मतलब वकील का दफ़्तर और 'बाथरूम' का मतलब पेशाब होता है। 'घी' का मतलब पूजा के दीपक का खाद्य और 'फल' का अर्थ बीमार का पथ्य होता है। 'कलाकार' का मतलब फरेबी या जेबकतरा होता है और 'गुरू' का अर्थ गुण्डा। 'पहुंचा हुआ' उसे कहते हैं जो छल-छद्म मे निपुण हो और

'हीरो' नाई के असिस्टेण्ट को कहते हैं। श्रीमान् या 'श्रीमान्‌जी' जिसे कहा जाता है वह अक्सर भोंदू, गावदू या असंगत व्यक्ति होता है जो मसलन ये न जानता हो कि रिश्वत कैसे ली या दी जाती है। (इसे अंग्रेजी में लाफिंग स्टोन यानी हँसता हुआ पत्थर कहा जाता है) और 'भेन्जी' का अर्थ निहायत अनाकर्षक महिला होता है। 'सहकारिता' का मतलब मिल-बाँटकर चोरी करना और 'खादी' का मतलब ऐयाशी होता है। 'गंगाजल' का मतलब आँख फोड़ने के लिए काम आनेवाला तेजाब और 'खातिरदारी' का मतलब पिटाई होता है।

भाषा विज्ञान की कक्षा में अर्थ परिवर्तन के जूने-पुराने उदाहरण वर्षों-वर्षों से दोहराने वाले अध्यापक भ्राता की खोज से प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं।

इस देश में अनेक अर्थशास्त्री हैं जो सही अर्थ में अनर्थशास्त्री हैं। एक ऐसे शास्त्री एक बार वित्तमंत्री हुए और उन्होंने ठाठ से भारतीय रुपये का अवमूल्यन करा दिया। और एक अब हैं जो अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष से कर्ज लेने का सही अर्थ यदि समझ भी रहे हों तो बता नहीं रहे हैं। हमारे सामाजिक जीवन में अर्थ का अर्थ जो विकराल रूप ग्रहण कर रहा है, उसके चलते विकास का अर्थ उत्पादन और उत्पादन का अर्थ आँकड़े और आँकड़ों का अर्थ जोड़तोड़ हो जाता है। लेकिन कौन कह सकता है कि कल जोड़तोड़ का अर्थ जनअसंतोष और जनअसंतोष का अर्थ विद्रोह और विद्रोह का अर्थ क्रान्ति नहीं हो जाएगा!

जब तक ऐसा हो, आप भ्राता के 'अर्थशास्त्र' से काम चलाइये। और नहीं तो मैं तो हूं ही आपकी 'सेवा' करने के लिए। □□

चिलम और चिंतन

दुबला-पतला आदमी अक्सर लोगों को यह बताना जरूरी समझता है कि उसका भाई पहलवान है। आम बातचीत में भी जिसकी आवाज डीजल इंजन के हॉर्न जैसी होगी, वह ये दावा जरूर करेगा कि वह लड़कपन में बहुत अच्छा गाता था। और जिसकी कमीज बगल में से फटी होगी, आप यकीन मानिए उसके एक मामा का लड़का अमरीका में होगा, एक चचेरा भाई कलेक्टर या कमिश्नर और और कुछ नहीं तो बाबा तो जरूर तहसीलदार रहे होंगे। यह मनुष्य ही है जो अपनी अन्वेषण बुद्धि और कल्पना शक्ति के मयुक्त प्रयोग से अपनी हर न्यूनता की क्षतिपूर्ति कर लेता है। आपने आज तक किसी कुत्ते से नहीं सुना होगा कि उसके फूफा को जूनागढ़ के नवाब अपने हाथ से मलाई खिलाते थे, या उसका चचेरा भाई फलां हर हाइनेस के बिस्तर पर सोता है।

देखा जाये तो क्षतिपूर्ति के इस मनोविज्ञान ने ही मनुष्य को कठिनतम परिस्थितियों में भी जिन्दा रक्खा है। स्वतंत्रता संघर्ष के समय हमने अपने प्राचीन गौरव को जिस तरह खोजा और सदा उसने अनेक

कमजोर पसलीवाली छातियों को भी सीने की तरह काफ़ी देर तक के लिए फुला दिया। हमारी ध्वनि होती थी—अबे अंग्रेज ! क्या हुआ जो हम धूल में लोट रहे है और कंडे थाप रहे है और भूखे मर रहे हैं... हमारे पूर्वज जगद्‌गुरु थे। हम राम, कृष्ण, शिवाजी और राणा प्रताप के वंशज हैं। आज भले हम तुम्हारी गुलामी करने की स्थिति में पहुंच गये हों, पर तुम्हें भूलना नही चाहिए कि हम भी रॉयल फेमिली से तात्लुक रखते है।

जब अंग्रेजों ने यह मिमियाता जयघोष सुना तो पहना अपना टोप, हाथ डाला मेम की कमर मे और न सिर्फ हमें टाटा, बाइबाइ करके, आजाद करके चले गये बल्कि सौगात में अनेक अनुपम वस्तुएं भी हमारे लिए छोड गये। जैसे मेकाले की शिक्षा पद्धति, आई पी सी, वकालत के चोगे, अंग्रेजी शराब, रिश्वत, 'नेक' टाई और अंग्रेजी भाषा।

लेकिन अंग्रेजों के जाने के बाद भी कइयों की कमजोर पसलीवाली छातियाँ फूली की फूली ही रह गयीं। चूंकि वे भारतीय भाषाओं की अपार विकासशील सम्पदा से अनभिज्ञ हैं इसलिए उनका क्षतिपूर्ति मनोविज्ञान बडे मनोरंजक नजारे खड़े कर देता है। ऐसे तमाम नरोत्तम पहले तो यही रट लगाये रहते थे कि भई संस्कृत अहा ! संस्कृत वहवा ! इनके सामने कोई संस्कृत मे गाली भी दे तो ये बिना आगे-पीछे देखे उसके पैर छू लें। इनका खयाल था कि जब आप पतलून पहनने लगे, मुंडमुण्डे होकर घूमने लगे और खडे-खड़े पेशाब करने लगे, तो आपसे क्या बात की जाय। ये वेदों की बात करते थे, पर उन्होने वेदों को पढा तो क्या देखा तक नही था। वे गीता की गौरवगाथा थे और उन्हे नहीं मालूम था कि गीता मौलिक किताब है ही नही—सांख्य दर्शन का कूटनैतिक भाष्य है। वे हर पुरानी किताब को 'ग्रंथ' कहते थे, चाहे वह जादू-टोने की हो, चाहे वैद्यक की चाहे गणिकाओं के गुणदोषवर्णन की।

ऐसे अनेक लोग अब देवलोक में देवभाषा का देवोपम प्रयोग कर,

रहे हैं। जो अब भी इस धराधाम की शोभा बढ़ा रहे हैं, वे भी कम धन्य नहीं हैं। जब वे वेदान्त और आत्मा और ईश्वर की बात करते हैं तो उन्हें यह नहीं मालूम होता कि इस देश के छहों प्रमुख दर्शन अनीश्वरवादी थे और कि लोकायत दार्शनिकों का सारा साहित्य तत्कालीन राजाओं ने जला दिया था और चार्वाक को तो स्वयं युधिष्ठिर ने मरवाया था। जब वे अहिंसा की बात करते हैं और आमिषभोजियों को 'म्लेच्छ' कहते हैं तो भूल जाते हैं कि आर्य ललनाएं तक न केवल मांस खाती थीं बल्कि मदिरा भी पीती थीं। गर्भवती स्त्रियों को तो सांड का मांस खाने की सलाह 'शास्त्र' देते थे। जब वे भारतीय संस्कृति की बात करते हैं तो उनका मतलब मात्र आर्य संस्कृति में से मात्र हिन्दू संस्कृति में से मात्र ब्राह्मण संस्कृति होता है। कोल-किरात-किन्नर-संथाल-मुंडा-लकरा-भील आदि भारत के करोड़ों आदिवासी-गिरिजनों का कोई योगदान उस संस्कृति में नहीं होता। वे ताजमहल को हिन्दू मंदिर बताते हैं और अजमेर को 'अजयमेरु' कहकर भाषाविज्ञान को अंटाउटर्न कर देते हैं। उन्हें नहीं याद कि उनके एक प्रबल मनीषी, बल्कि 'राजर्षि' ने खजुराहो के मंदिरों को मिट्टी में दबाने की अमूल्य सलाह इस देश को दी थी। उनका बस चलता तो वे सारे देश की गायों-भैंसों-बैलों-सांडों-घोड़ों-गधों-कुत्तों-बिल्लियों को चड्डी पहनाकर छोड़ते।

ऐसे ही एक पवित्रात्मा से परिचय का पुण्य मुझे भी प्राप्त हुआ था। उनका विचार यह था कि हर चीज भारत से निकली है, और वह इसी बात से खुश हैं कि हर चीज भारत से निकली है। वे हर्क्यूलिस को 'हरिकुलईश' और एटलांट को 'अतलांत' कहते थे। जर्मन विद्वान् मेक्समूलर उनके लिए 'मोक्षमूल' था और अंग्रेज लेखक शेक्सपीयर कश्मीर का गड़रिया 'शेखपीर'। वे पुष्पक के हवाले से विन्सी और राइट बंधुओं को पछाड़ देते थे और गणेश की कथा से आधुनिक सर्जरी की खाल में भूसा भर देते थे। क्योंकि 'अजा' का मतलब बकरी होता है इसलिए प्रजा उनके लिए भेड़-बकरी के अतिरिक्त क्या है? और क्योंकि 'क्रिश्चियन' में से 'क्रिश्न' की

होगा जिसमें वह अपने नाखूनों से अपना सीना फाड़े डाल रहे हैं, भसड़-भगड़ खून बह रहा है और अंदर एक सोने के पत्तरवाला सिंहासन रखा है जिस पर राजा रामचन्द्रसिंह और रानी सीतादेवी मस्ती से बैठे हैं। बैठे हैं तो ठीक है लेकिन मजेदार बात यह है कि हनुमान का दिल बायीं तरफ नहीं, सेण्टर में है, और इससे भी मजेदार बात यह है कि डॉक्टर लोग भी इस तस्वीर के आगे बड़ी श्रद्धा से हाथ जोड़ रहे हैं।

मेरे जैसे अधम, अकिंचन, पतित प्राणी के मन में लड़कपन से ही इन प्रतीक-पुरुषों को देखकर तरह-तरह की अशिष्ट-अभद्र जिज्ञासाएं उठा करती थीं जिनमें से कुछ—जो अपेक्षाकृत मासूम हैं—मैं आज भी आपको बता सकता हूं।

आप रावण का चित्र देखिए। उस भाईसाब के दस सिर हैं और बीस हाथ। सिर सब मूछ-मुकुटवाले और हर हाथ में कोई न कोई चीज पकड़ी हुई—उठाने-धरने-पकड़ने-सरकाने-खुजाने-सहलाने के लिए कोई हाथ खाली नहीं। अब पूजापाठ करनेवाला आदमी है। दाढ़ी बनाने के लिए कितने नाई एक साथ जुटते होंगे? दस? दस सिरोंवाला यह बेचारा भाईसाब बोलता किस मुंह से होगा, खाता किस मुंह से होगा, टूथब्रश कैसे और किस क्रम में, किस-किस मुंह में करता होगा और दस सिर बीस हाथ लेकर सोता कैसे होगा, करवट कैसे लेता होगा? और साहब! क्या तारीफ करें उस दर्जी के कमाल की जिसने इस भाईसाब का अंगरखा सिया होगा। दस बांह इधर दस बांह उधर, पर फिटिंग एकदम परफेक्ट! आजकल के दर्जी तो दो बांहोंवाला बुशर्ट भी ठीक से नहीं सी पाते।

अब आप लक्ष्मीजी का चित्र देखिए। वह तालाब में कमल पर बैठी हैं और उनकी हथेली से चमकदार सिक्के निकल रहे हैं। और बड़ा कमल उस तालाब में एक ही है, जिस पर वह बैठी हैं? बाकी कमल बहुत छोटे हैं और बहुत दूर हैं। तो सवाल यह है कि वह इस कमल तक पहुंचीं

कैसे होंगी ? अगर कीचड में से चलकर गयी तो उनकी इतनी महंगी साडी का सत्यानाश क्यों नहीं हुआ ? और मान लो, अभी कमल जरा डगमगा जाय तो क्या ये कीचड में गिर नही पडेंगी ? और वह हाथी का बच्चा.... उसे तो मुड़ने में भी पांच मिनिट लगेंगे, जैसे मिनिस्टरों को लगते है, और अंतिम बात कि कीचड मे रुपये गिराते जाना कहां की अक्लमंदी है ?

अब सरस्वती को देखिए। जब गणेश जैसा स्थूलकाय व्यक्ति चूहे जैसे क्षीणकाय व्यक्ति पर बैठने मे जरा नही हिचकिचाया, तो यह हंस नामक व्यक्ति पर बैठने में क्यो शरमायें ? लेकिन यह बजाती क्या हैं ? वीणा ? वीणा बजाना इनको आता है ? एकदम नही आता। नाम रख लिया वीणावादिनी और वीणा को पकडे है सितार की तरह। ठीक से पकडना नही आता तो बजायेंगी क्या खाक ? लगता है जिस तरह गांव के मेलो में लोग लकडी के स्कूटर-मोटर-हवाईजहाज पर हाथ-पैर या पुट्ठे रखकर फोटो खिचवा लेते हैं, इन्होने भी खिचवा ली होगी। वरना आगे-पीछे कही एक तबलची जरूर होता।

दरअसल ये सारे देवी-देवता मनुष्य के सद्‌गुणों के प्रतीक हैं और इन्हें समझने की आवश्यकता है, पूजने की नहीं। लेकिन हमने इनको मन में धारण करने की बजाय पत्थर की मूर्ति बनाकर मन्दिरो में स्थापित कर दिया है। जिसे हम धर्म कहते है, वह सिर्फ महज संप्रदाय है और पिछले तीन-चार दशको का इतिहास सिद्ध कर चुका है कि इस देश में हिन्दू अपने सामाजिक आचरण मे सबसे अधिक साप्रदायिक हैं। हमारे प्रधानमंत्री को पंडों के गंदे पैर पूजने में और हमारी आकाशवाणी को हर सुबह भजन-कीर्तन प्रसारित करने मे कोई शर्म नहीं आती। हिन्दू से मुसलमान या क्रिश्चियन होने को हम धर्मपरिवर्तन कहते हैं और मुसलमान या क्रिश्चियन से हिन्दू होने को 'शुद्धिकरण'। हम सरकारी योजनाओ का शिलान्यास नारियल फोडकर मंत्रोच्चार के साथ करते हैं और विदेशी अतिथियों का स्वागत छात्राओ से आरती उतरवाकर।

इन 'धार्मिक' रस्मों को दूसरे संप्रदाय के लोग देखेंगे तो क्या सोचेंगे ? व्यक्तिपूजकों का यह देश रोज एक भगवान्—डिप्टी भगवान् पैदा कर लेता है और फोर्ड या रॉकफेलर फाउण्डेशन के पैसे से देश की राजधानी में गांधी-इंदिरा मंदिर बनने की अनुमति देकर प्रसन्न होता है। यह पुनरुत्थानवाद या फंडामेंटलिज्म भी नहीं, कीचड़ में लोटना है।

आइये, हम इस कीचड़ को सुखाने की कोशिश करें। क्योंकि तभी तो लक्ष्मी किनारे आ पायेगी। हाथियों का तो उसे खुद भरोसा नहीं।

□□

बीचवाले

जो स्थिति किसी तिमंजिले या बहुमंजिले मकान की होती है, वही स्थिति पूरे देश की है। नीचेवाले के पास आगे-पीछे खुली जमीन है, ऊपरवाले के पास छत, और बीचवाले के पास क्या है? नीचेवालों से ऊपर होने के घमंड और ऊपरवालों से नीचे होने की कुढ़न के सिवा? नीचे गंदगी है, बदबू है, मच्छर है, बरसात के दिनों में कीचड़ है, चोर-डाकुओं का डर है, भिखारियों, चंदा मांगनेवालों और आवारा कुत्तों का अंदेशा है, ऊपर से टपकती नालियां और ऊपर से फेंका जाता कचरा है, सेप्टिक टैंक बन्द हो जाने या लेट्रिन चोक हो जाने का खतरा है; लेकिन जो भी सही, नीचेवाला कम से कम आगे-पीछे बगीचा लगा सकता है, साइकिल, मोटरसाइकिल सुरक्षित खड़ी कर सकता है, अपनी श्रद्धा और भोजनचर्या के अनुसार भैंस या मुर्गियां पाल सकता है, उसके बच्चे अपनी औकात और रुचि के हिसाब से सतोलिया या बेडमिंटन खेल सकते हैं, उसकी घरवाली पड़ोसवाली चाची के भरोसे घर छोड़कर मंदिर जा सकती है। सामने ही सब्जी, दूध, ब्रेड बेचनेवाले आते हैं।

फटे कपड़ों के बदले बर्तन देनेवाली और रद्दी खरीदनेवाला भी ऊपर नहीं आता। अखबार की भोगली रॉकेट की तरह आकर केक्टस के गमले में नहीं गिरती....बमबारी भी हो तो फटाक से भागकर खंदकों में पहुंच सकते हैं, यह सब क्या कम बात है ?

ऊपरवालों के पास खुली छत है, साफ हवा है, भरपूर धूप है, ऊंचाई से चीजों को देखने का लुत्फ है, सूर्योदय और सूर्यास्त के रंगीन नजारे हैं ...खिड़कियों के पल्ले, हिलते पर्दों के पीछे उघड़ती सारी दुनिया की गृहस्थियां हैं और सिर के ऊपर हमेशा खुला आकाश है। वे बालकनी में बैठकर अखबार पढ़ सकते हैं, छत पर उनके बच्चे ट्राइसिकल चला सकते हैं, लड़के पतंग उड़ा सकते हैं, बड़े-बूढ़े गपशप कर सकते हैं, महिलाएं मिर्च सुखा सकती हैं, रजाई में डोरे डाल सकती हैं, लड़कियां सामने के ब्लॉक के छतवाले छोकरों से आंखमटक्का कर सकती हैं। गर्मियों में शान से पसरकर सोते हैं। घर का अतिरिक्त काठ-कबाड़ भी ऊपर पहुंचा सकते हैं। न घर में सीगर है न फफूंद, न चूहे न मक्खियां।

और बीचवाले ? बीचवालों की मुसीबत है। बीचवालों की मुसीबत आदिकाल से चली आ रही है। वहां मक्खियां भी हैं मच्छर भी, फफूंद भी है और सीलन भी, सीगर भी है, और तिलचट्टे भी, चूहे भी हैं और खटमल भी, परस्पर अविश्वास भी है और परस्पर ईर्ष्या भी, निरंतर घुटन भी और मुसलसल उपेक्षा भी। वे अपनी मोपेड गाड़ियां नीचे रखते हैं, क्योंकि रोज ऊपर ला नहीं सकते, और डरते रहते हैं कि कोई टायर न काट दे, हवा न निकाल दे, हेडलाइट न मार ले, क्लचवायर न तोड़ दे, सीट की गद्दी न फाड़ दे। आड़े-टेढ़े ब्लाकों के बीच वह छछूंदरों की तरह फंसे हुए हैं। न वहां रोशनी आती है न धूप न हवा। न वे कुत्ता पाल सकते हैं न गाय। उनके बच्चे न बेडमिंटन खेल सकते हैं न पतंग उड़ा सकते हैं। न उनकी लड़कियां पड़ोसियों के छोकरों से नोट्स मांग सकती हैं न 'एक मिनिट में आयी मां' कहकर सहेलियों

के यहां भाग सकती हैं। नीचेवाले पत्थर के कोयले की सिगड़ी बाहर रखकर जलाते हैं, धुआं उनके घर में आता है। ऊपरवालों के यहां मिक्सी चलती है, लगता है सारी दीवारें थरथराती हुई उन पर गिर पड़ने की तैयारी कर रही हैं। बालकनी में धूप का एक छोटा-सा टुकड़ा आता है और ख़रगोश की तरह दुबककर बैठा रहता है। उसमें रजाई-गद्दों को धूप दिखा लो, या सिर धोकर नहाओ तो बाल सुखा लो, शायद गोले का तेल रखने लायक वह धूप रहती है....इसीलिए उनकी बालकनी में मनीप्लाट नहीं पनपता। घर की सफाई के लिए सामान निकालना पड़ेगा। कहां निकालो ? गैस का सिलेंडर खुद ढोकर ऊपर लाना पड़ता है। बूढ़े दिन भर कुड़मुड़ाते रहते हैं, बच्चे नाक बहाते रहते हैं, औरतें झींकती रहती हैं और लड़कियां सपने देखती रहती हैं। लड़के घर में रहते ही नहीं। सिर्फ खाना खाने और सोने के लिए घर में आते हैं।

बीचवालों की यही नियति है। उनकी आकांक्षाएं उन्हें रात-दिन ऊपर खींचती रहती हैं, उनकी परिस्थितियां उन्हें दिन-रात नीचे ढकेलती रहती हैं। नीचेवालों से उन्हें उपेक्षा मिलती है ऊपरवालों से हिक़ारत। अपने बच्चों को नीचेवालों के बच्चों के साथ वे खेलने नहीं देते, ऊपरवाले बच्चे उन्हें अपने साथ खिलाते नहीं। बूढ़े नीचेवालों से दू-तड़ाक से बात करना चाहते हैं, वह आजकल चलता नहीं और ऊपरवालों के चलन उन्हें पसंद नहीं। बेटी बाप के कंधे से झूल रही है, लड़का मां को यार-यार कर रहा है, बहुएं झबरे बाल कटा आयीं, साहब का 'अंग्रेजी' के बग़ैर चलता नहीं, न धरम-करम न पूजा-पाठ न संध्या-अर्चना न आचार-विचार। कोई ऊपरवालों का लड़का सीढ़ियां उतरते-चढ़ते कभी 'गुडमॉर्निंग अंकल' सरका जाये तो आत्मा खिल जाती है....उसके अंतर्धान होने के तीन मिनट बाद तक भी गुडमॉर्निंग बेटे गुडमॉर्निंग बेटे बोलते रहते हैं। लड़कियां नीचेवालों के यहां जाने नहीं दी जातीं, ऊपरवालों के यहां जाकर रोज़-रोज़

अपनी 'टेस्ट' करवाना नहीं चाहती। और लड़के? क्या कहा जाय? आपको पता हो कि वे कहां जाते हैं, क्या करते हैं, तो आप ही बताइये।

तो कुल मिलाकर हाथ क्या आया? पिटमारे बच्चे, आवारा लड़के, निठल्ले बूढ़े, दिवास्वप्नों में घूमती लड़कियां और गठिया-बाय-नजले और आयाशोमी में डूबी महिलाएं। नीचेवालों के संदर्भ में सतत यंत्रणाएं और ऊपरवालों के संदर्भ में अपार कुंठाएं! बस ये हैं कि जी रहे हैं। बैलेन्स बनाये हुए हैं किसी तरह। जैसे कोई साइकिल के पीछे कैरियर न होने पर मडगार्ड पर ही बैठ जाये....और चल भई!

इस बिल्डिंग में नैतिकता की कद्र सिर्फ बीचवाले जानते हैं। नीचेवाले जो हैं वे इसे अफोर्ड ही नहीं कर सकते, ऊपरवाले उसकी परवाह ही नहीं करते, सिर्फ बीचवाले उसके लिए प्राण देने को तत्पर रहते हैं, और मजा यह कि सबसे ज्यादा अनैतिक भी वही होते हैं। कदम-कदम पर उन्हें समझौते करने पड़ते हैं और उनकी आत्मा पाप के बोझ तले दबी ही रहती है।

कहते हैं बुद्धिजीवी विचारधाराओं की चर्चा करते हैं, समझदार लोग व्यक्तियों की और औसत लोग घटनाओं की। इस बिल्डिंग में भी ऐसा ही होता है। ऊपरवाले 'नीति' की बात करते हैं, बीच वाले 'नेता' की और नीचेवाले 'बातों' की। ऊपरवाले ग्रामफोन पर अंग्रेजी रेकार्ड चढ़ाकर नाच सकते हैं, नीचेवाले दस जन पग या ढप लेकर बिरहा या आल्हा या होली गा सकते हैं, नाच भी सकते हैं....बीचवाला सारे नाचने-गाने को बेहूदा समझता है और वाहियात। पर उसी के लड़के दोस्त की शादी में घोड़ी के आगे सड़क पर नाचते हैं....और जो वह नाचते हैं वह सचमुच बेहूदा और वाहियात होता है। ऊपरवाली लड़कियां 'डेटिंग' करती हैं और कोर्ट मैरेज, नीचेवाली किसी दिन किसी लड़के के साथ भाग जाती है, बीचवाली प्रतीक्षा करती रहती है कि बूढ़े मां-बाप और आवारा-बेरोजगार भाई उसके लिए एक दूल्हा खरीदकर या कोशिश कर

लगभग रामचन्द्र शुक्ल

पास के कस्बे से एक दिन एक सज्जन आये और बोले—मैं साहित्यकार बनना चाहता हूं। मुझे क्या करना चाहिए ?

उन्हें मैं जानता हूं। वृत्तियों से क्षत्रिय हैं। जिद्दी भी हैं। और एम. ए. भी हैं।

मैंने कहा—और तो कुछ तुमसे होगा नहीं। ऐसा करो, आलोचक बन जाओ। पिछला जमाना होता तो मैं कहता कि पहले कुछ कविता-कहानी लिखो और कोशिश करो कि लिखने में असफल रहो। असफल लेखक बड़े सफल आलोचक होते हैं। लेकिन अब इसकी जरूरत नहीं। आलोचना का बाजार गर्म है। कहानी-कवितावालों को किसी प्रकाशक की दाढ़ी तक नहीं मिलती जिसमें वे यदाकदा हाथ वगैरह डाल सकें, और आलोचक प्रकाशक की कार में बैठकर साहित्य समारोहों की अध्यक्षता करता घूमता है। उसे हर महीने दस-पांच आयोजनों की शोभा नामक वस्तु बढ़ाने का अवसर प्राप्त होता है। फिर डीलडौल और उम्र की भी बात है। अच्छी रचना के साथ बबुआ टाइप तस्वीर छपी

तो रचना को भी बालसुलभ नादानी मान लिया जाता है। लोग निस्संकोच आप से तुम पर उतर आते हैं। जब कि इधर ठीक से दाढ़ी-मूछ निकलने से पहले ही लोग प्रख्यात आलोचक का खिताब पा जाते हैं। तुम तो अलबत्ता डीलडौल में भी खासे हो। पान खा लोगे और मोटी फ्रेम का चश्मा लगा लोगे तो खूब जमोगे। पी-एच. डी. किस्म की कोई चीज कर लो तो बूढ़े होते-होते 'आचार्य' भी बन सकते हो। फिर मुझे भी इधर एक आलोचक रखने की जरूरत महसूस हो रही है। तुम हो जाओगे तो मूल्यांकन न सही, नामोल्लेख तो करोगे ही। या नहीं ?

भले आदमी ने निरीहता से पूछा—आलोचक बनने के लिए क्या करना होगा ?

—विवादास्पद बनना होगा। मैंने समझाया।—अगर तुम सीधी और सुलझी बातें करते रहोगे तो कोई नोटिस नहीं लेगा। चौराहे से सैकड़ों आदमी गुजरते हैं। ध्यान उसी पर जाता है जो कोई ऊटपटांग हरकत कर रहा हो। मसलन लड़की छेड़ रहा हो। या किसी की जेब काटकर भाग रहा हो।

—उसे तो जूते पड़ते हैं ! उन्होंने डरकर कहा।

—तुम्हें भी पड़ेंगे। मैंने आश्वस्त किया।—जिन लेखकों के साथ अन्याय होगा, वे अवश्य इसकी कोशिश करेंगे। पर डरना मत। इससे चाद मजबूत होती है। होगी। आलोचक की चाद बहुत मजबूत होनी चाहिए। यों लहूलुहान नहीं होना पड़ेगा, क्योंकि लेखकों के जूते रबर के भी नहीं, स्पंज के होते हैं।

—तो शुरुआत कैसे की जाये ?

—एक लेख लिखो। इसमें साबित करो कि मुक्तिबोध बावजूद एक महान् कवि होने के दरअसल एक महान् कवि नहीं थे। बेशक वह जनवादी थे लेकिन हकीकत यह है कि उन्हें जनवादी कहना ठीक नहीं है। वे मार्क्सवादी थे, लेकिन वे मूर्ख हैं जो उन्हें मार्क्सवादी कहते हैं।

कहने लगे—पिछले दिनो दिल्ली से एक निमंत्रण मिला।

—बधाई हो। मैंने कहा।—गये थे ?

बोले—हां, गया था। पर वहा बडी गड़बड़ हो गयी। नौजवान लेखकों ने मेरी खिचाई कर दी।

मुझे लगा जैसे मैं बैठे-बैठे अचानक आदमी से थाने के मुशी मे तब्दील हो गया हूं। और यह गरीब मेरे पास किसी फौजदारी की एफ. आई. आर. दर्ज कराने आया है। तो उसी अंदाज मे मामले की तहकीकात शुरू की।

—क्या हुआ ? क्या बोले आप ?

—बोल रहा था हिन्दी कहानी पर। मैंने यह कह दिया कि सुदर्शन पर ज्ञानरंजन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। अब मुझे क्या मालूम कि सुदर्शन ससुरे ज्ञानरंजन के पैदा होने से पहले ही मर गये !

एक मिनिट ! यह ज्ञानरंजन का नाम तुमने कहा सुना ? क्या तुम इधर कुछ समकालीन साहित्य तो नही पढ गये ?

—दो-चार किताबें पढने मे आ गयी। उन्होने अफसोस करते हुए कहा।

—यही सबसे बड़ी गलती हुई। न तुम कुछ पढते-लिखते न यह गड़बड़ होती। मेरे भाई ! याद रखो कि समकालीन साहित्य एकदम कूड़ा होता है। हालांकि पन्द्रह साल सड़ने के बाद यही कूड़ा महान् हो जाता है। और। फिर क्या हुआ ?

—मैं हूट हो गया। गोष्ठी के बाद एक लड़का पूछ बैठा—हालांकि उसने बड़ी शालीनता से पूछा—सर, आपने किन-किन ऑथर्स का विशेष अध्ययन किया है ?

—गनीमत है यह नही कहा—पहले पढकर आइये। मुझसे कह देते है। और तुमसे क्या कहा ?

—मैं नाम गिनाने लगा। जो मुंह में आया।

—गलती की। कहना चाहिये था कि मैंने कुछ नही पढा। साफ

बेशर्मी से अपना अनपढ़ होना स्वीकार कर लेना चाहिये। इसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। आप सच बोल रहे होते है, और सामनेवाला समझता है आप नम्रता दिखा रहे हैं। या शायद आप सचमुच महान् है।

—लेकिन अगर कोई पूछे कि क्या-क्या पढ़े ? तो ?

मैंने उन्हें घूरकर देखा।

शरमाते हुए बोले—आजकल पूछने लगे हैं। खासकर लड़कियां।

—ठीक है, मैंने कहा—फौरन कह दो हिन्दी में पढ़ने को है ही क्या ? और खिसक लो। खड़े रहोगे तो फँस जाओगे।

वह चुपचाप नया पान चरने लगे और धोती के पल्ले से चश्मा साफ करने लगे। मैंने देखा कि एक वर्ष में उन्होंने अपने व्यक्तित्व में काफी बेशर्मी विकसित कर ली है।

—कोई प्रकाशक वगैरह पटा या नहीं ? मैंने पूछा।

—दो पुस्तकें छपी है। मैंने भेजी थीं। शायद आपको देखने का समय नहीं मिल पाया।

मुझे याद आया कि हां, इस कम्बख्त की दो किताबें आयी थी।

मैं चुप हो गया। वह भी चुप हो गये। हम दोनों के बीच बड़ी इन्टेलेक्चुआना चुप्पी छाने लगी। वह बड़ी अदा से इसे तोड़ते हुए बोले—सोच रहा हूं कुछ पढ़ ही डालूं।

मुझे उनसे सहानुभूति हुई। समझाते हुए कहा—देखो ! लेखकों से डरना नहीं चाहिए। आलोचक एक स्कूल टीचर होता है। उसका काम होता है लेखकों की गलतियां निकालना और उन्हें बेंत लगाना। आलोचक को यही समझना चाहिए कि वह गड़रिये की तरह आगे-आगे चल रहा है और लेखक भेड़ों की तरह पीछे-पीछे आ रहे है। ऐसा सोचने से जरा चूके कि गये। इज्जत उसकी होती है जो नुकसान कर सकता है। इसलिए उखाड़ना सीखो। जमाना तुम्हारा काम नहीं। कभी खुलकर किसी की तारीफ मत करो। तारीफ करना जरूरी हो तो थोड़ी-सी कर दो। और अंत में उसे भी काट दो। ऐसे बोलो कि सुनकर कोई समझ हो नहीं सके

कि तुम किस तरफ़ हो। इस तरह तुम्हारा आतंक फैलेगा। और लेखक डर के मारे तुम्हारी इज्जत करने लगेंगे। कोई आश्चर्य नही अगर कुछ लोग चाटुकारी भी करने लगें। ऐसा हो तो चुपचाप करवा लेना। व्यर्थ के संकोच मे मत पडना। हो सके तो एक बार कुछ दिनों के लिए बनारस या इलाहाबाद हो आओ।

कुछ रुककर फिर मैंने ही पूछा—तुम्हारे कुछ कोटेशन्स चले या नही ?

—मैं समझा नहीं।

—कुछ वैसे तो बनाये ही होंगे। उनसे स्वयं पर लेख लिखावाओ। डिक्टेट भी करा सकते हो। उनमें कुछ कोटेशन्स फेंको। मसलन—'कविता लिखने के लिए केमिस्ट्री पढना जरूरी है।' या 'कविता तब ही लिख ली जाती है जब वह देखी अथवा सूंघी जाती है।' अथवा 'कविता दलदल में धँसे आदमी से मौसम पर संवाद है' वगैरह।

मुझे लगा इतने से वह संतुष्ट हो गये। ठीक पता चल जाता—ऐसे मासूम अब वह नही थे। खैर। चले गये।

□□

सालभर बाद एक गोष्ठी मे अचानक भेंट हो गयी। वह उदीयमान और अस्तप्राय: लेखकों से घिरे हुए थे। मुझे उन्होंने बहुत मुश्किल से पहचाना। मुझसे संबंधित रह चुकने पर शर्मसार लग रहे थे। उनकी दशा उस लडकी की-सी हो रही थी जो पति के सामने अपने 'अनैतिक' संबंधों को प्रकट नही होने देना चाहती। वह मुझसे बोले—बतियाए नहीं। चलते समय अपनी नयी पुस्तक जरूर थमा दी। समीक्षाओं और निबंधों का संकलन था।

घर आकर किताब खोली तो सिर पीट लिया। उसकी प्रथम चार समीक्षाएं वही थी जो दो वर्ष पहले मैंने उनके नाम से लिखी थीं। □□

भैयाजी की भूतकथा

आजादी का एक फायदा तो हुआ कि हम साल मे चार-छह बार बाकायदा शोक मनाना सीख गये। इस समय मैं उन लोगों की बात नही कर रहा हूं जिनका हर दिन शोक से ही शुरू होता है और शोक पर ही समाप्त हो जाता है। महंगाई का शोक, मौसम का शोक, मेहतरानी का शोक वगैरह। क्योंकि ये शोक तो चलताऊ किस्म के है। बात चल रही है महत्वपूर्ण वी. आइ. पी. शोकों की। जैसे हाय...भारत की प्रतिभाएं अच्छी नौकरी मिलते ही विदेश....या....अरे रे! कित्ता बुरा हुआ! हम फिर हॉकी में हार गये। ये शोक मजेदार है। विटामिनों से भरपूर हैं, नाटकीय हैं और गरिमावान् हैं।

ऐसा ही एक शोक है भैयाजी का शोक!

बात यह थी कि तन, मन और धन का पूरा जोर लगाने के बावजूद भैयाजी इस बार चुनाव हार गये। हारे ही नही, जमानत भी जब्त हो गयी। इधर महीने भर तक बिजनेस का नुकसान हुआ सो अलग। तो जब उन्हें यह समाचार सुनाया गया कि देशवासियों के सौभाग्य से आपकी

जमानत जो है सो जब्त हो गयी है—तो नेताई मूकाभिनय के मारे खटके भूलकर उन्होंने निहायत गंवारू अन्दाज में सीने पर हाथ मारा और गद्दे पर गिरते हुए बोले—हे भगवान् ! अब तो उठा ले ! और मर गये। यानी कि सचमुच में मर गये। भगवान् को पता नहीं क्या जंची कि इस विनयपत्रिका पर फौरन दस्तखत ठोक दिये। यमराज को अर्जेण्ट टेलीफोन बुक किया गया और फर्स्ट अवेलेबल येन पर बैठकर श्री यमदूत आये और भैयाजी की रूह को ले गये।

भैयाजी बाकायदा मर गये। उठ गये।

उठ तो गये....पर चित्रगुप्त केजुअल लीव लेकर चुनाव परिणामों के स्पेशल समाचार बुलेटिन सुनने मेनका के क्वार्टर पर गये हुए थे। सो... उनका काम भी भगवान् को करना पड़ा। आलसी मुसिफों की तरह सारी फाइल पढ़ने की बजाय उन्होंने डायरेक्टली भैयाजी से ही पूछ लिया—बताओ तुम्हें कहां भेजा जाये? स्वर्ग में या नरक में?

भैयाजी ठहरे वणिक वृत्ति के आदमी। सो भी नेता। खीसें निपोरते हुए बोले—अर्जी हम तो आपकी इच्छा के भक्त हैं। अब क्या कहें? जहां चार पैसे का फायदा हो, वहीं भेज दीजिये।

यह सुनकर भगवान् चौंक गये। अच्छे-अच्छे दस नम्बरी आये। बड़े से बड़ा कुटिल देखा....लम्पटों और धूर्तों के कई किस्से चित्रगुप्त से सुने... पर इस जैसा तो कोई नहीं देखा, जिसे भगवान् के सामने भी चार पैसे के फायदे की बात करने में शर्म नहीं आयी। इसका क्या किया जाय?

बूढ़े अनुभव ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज! यह स्वर्ग में जाने लायक तो है ही नहीं, नरक में भेजा जाने लायक भी नहीं है। कहावत है कि नीम चढ़ा करेला, अकादमी चढ़ा कलाकार, नशा चढ़ा सांड, हवाई-जहाज चढ़ा साधू और राजनीति चढ़ा बनिया....इन्हें बेहद खतरनाक समझना चाहिए। यह दुष्ट नरक में भी पार्टीबाजी और तोड़-फोड़ शुरू कर देगा, शामकीय सजा देनेवालों को रिश्वत खाना सिखा देगा और कहीं

धरती के अखबारों में आपके खिलाफ कुछ छपवा दिया तो लेने के देने पड़ जायेंगे। वैसे भी आपका प्रभाव यहां दिन-ब-दिन क्षीण पड़ता जा रहा है।

—अच्छा ? भगवान के माथे पर पसीने की बूंदें छलछला आयीं। वह मंत्रियों की मुद्रा में हथेली पर ठोड़ी टिकाए चिन्ता करने लगे।

क्या किया जाय इस आदमी का ?

तभी कंधे पर किसी के गुदगुदे स्पर्श ने झुरझुरा दिया।

उनकी जोखियम फुसफुसा कर बोली—चुनाव हारकर आया है। अतृप्त आदमी है। इसे भूत बना दो।

भगवान की बाछें खिल गयीं। आनन-फानन में ऑर्डर हो गये। भैयाजी भूत बन गये।

भूत बन गये...पर नेतागिरी नहीं छूटी। पहली दोस्ती की एक शायर से जो शराब के लिए बुरी तरह तरस रहा था। भैयाजी फौरन उसे अपने शहर के काली मन्दिर पर ले गये जहां रोज केसर-कस्तूरी की बोतलें चढ़ाई जाती थीं। शायर अब जो है सो...ऐसा था कि उसके पेट में शराब के सिवा कुछ नहीं ठहरता था। उसने भूतलोक के सारे रहस्य भैयाजी को बता दिये। तब भैयाजी ने दोस्ती की एक पुलिस के सिपाही से जो बहुत दिनों से किसी को मोटी-मोटी गालियां देने के लिए तरस रहा था। भैयाजी उसे रोज शाम किसी सात्विक-सी जगह ले जाते और उसके सामने सिर झुकाकर खड़े हो जाते। पुलिसवाला अपनी भड़ास निकाल लेता और बदले में उस पत्रकार का थोबड़ा बन्द रखता जिसने भूत बनने के बाद भी भैयाजी का पीछा नहीं छोड़ा था।

भैयाजी को भूतलोक में बड़े दिलचस्प चरित्र मिले जो कि स्वाभाविक ही था। क्योंकि यदि वे दिलचस्प और पेचीदा नहीं होते तो भूतलोक में आते ही क्यों ? भैयाजी को एक कुमारीजी मिलीं जो मृत्यु-लोक में कुमारी होने के अतिरिक्त एक नर्स भी थीं और डॉक्टर को छोड़-

कर एक राजेश खन्ना टाइप धनवान रोगी का अधिक ध्यान रखने के उपलक्ष में मार डाली गयी थी। भैयाजी कुमारीजी की अतृप्त इच्छाओं की बड़े निर्लिप्त भाव से पूर्ति करते रहे जिसके बदले कुमारीजी भैयाजी के लिए नये-नये अनुयायी फँसाने का नाजुक काम करती रहीं।

इनके अतिरिक्त भैयाजी को वहां एक गरीब अध्यापक मिला जो आर्थिक अभावों से प्रेरित हो, आत्महत्या कर इस गति को प्राप्त हुआ था और आज भी एक प्लेट गरम-गरम भजियों के लिए तरस रहा था। एक नाई मिला जो गल्ती से एक ठाकुर की मूंछ मूड़ लेने के उपलक्ष में धारा तीन-सौ-दो का शिकार हो चुका था। एक बाबू मिला जो ईमानदारी के दण्डस्वरूप एक ऐसी जगह फेंक दिया गया जहां के खटमल-मच्छर और साप-बिच्छू यमदूतों से कमीशन खाते थे। असफल प्रेमी-प्रेमिका और राजनीतिबाज सबसे अधिक मिले।

भैयाजी ने हरेक से दोस्ती गांठी। हरेक की मांगें सुनी। आश्वासन दिये। हरेक को किसी न किसी संघ का सदस्य बना दिया और हरेक का किसी न किसी से झगड़ा करवा दिया। कुछ ही दिनों में बिल्कुल भारत-भूमि जैसा वातावरण बन गया। मूर्खतामय और दिलचस्प जिसके एक-छत्र नेता भैयाजी।

पर हाय रे नेता का दुर्भाग्य....पता नहीं किसकी नजर लगी.... किसका शाप, किसकी ईर्ष्या, किसका षड्यंत्र.. थोड़े ही दिनों में भैयाजी का (गोभी के) फूल-सा चेहरा लटककर बया-घोंसलावत हो गया। कनपटियों के बाल मशीन साफ करनेवाले जूट जैसे सफेद हो गये, तोंद का शानदार घेरा सूखकर ढोलक की मानिन्द रह गया ..खट्टी-खट्टी डकारें आने लगी, मुह से हाय-हाय निकलने लगी .. आखें शून्य के स्पंज में गड़ने-निकलने लगी।

एक दिन भैयाजी के परम भक्त पुलिसवाले ने भैयाजी से पूछा—भैयाजी... आपकी सुकोमल मर्सडीज बॉडी को यह क्या होता जा रहा है ? वह कौन-सी चिन्ता है जो आपको आमलेट की तरह खाये जा रही है।

यदि कोई प्राइवेट या पालटीम की बात न हो तो हमसे कहें। हम ग्रापकी खातिर जान तक दे सकते हैं।

भैयाजी कुछ देर चुप रहे। बैठक बदलकर आंखों की कीचड़ साफ़ की। दो पल एकटक अपने नाखूनों को घूरते रहे और फिर एक गहरी सास लेकर बोले—नहीं पुलिसवाले ! उससे भी कुछ नहीं होगा।

पुलिसवाले ने निहायत ढीठ नम्रता से फिर अपना आग्रह दोहराया।

भैयाजी बोले—पुलिसवाले ! हमने हमेशा तुम लोगों का भला चाहा। तुम लोगों के लिए कई बलिदान भी किये। अपनी जान पर खेल कर हमने तुम्हें नारे दिये....वादे दिये....झूठे आश्वासन दिये। संघ और संस्थाएं दीं। अव्यवस्था फैलाने की व्यवस्था की। बेहूदगी करने का कायदा दिया। अनुशासनबद्ध लफगई और टुच्चई सिखायी। जिन चीजों की कमी नहीं थी उनकी कमी पैदा की। जिन बातों पर तुम खामोश थे...उन पर झगड़े पैदा करवाये ताकि तुम लोकतंत्र और समाजवाद का सही रूप जान सको। अपनी दोपहर की नींद, अपने दुश्मनों का करार सब कुर्बान किया। कितनी भागदौड़ की हमने ?

और हमे मिला क्या ? तुमने कभी सोचा कि तुम्हारा भैयाजी भी किसी चीज के लिए तरस रहा होगा ? तुमने विचार किया कभी इस बात पर....कि भैयाजी की आत्मा क्यों हमेशा छटपटाती रहती है ?

पुलिसवाला लल्लुओं की तरह भैयाजी को देखने लगा।

भैयाजी अचानक चुप हो गये। और चुप ही रहे।

अपराध भाव की यंत्रणा तले बिल्कुल कुचलकर पुलिसवाले ने हाथ जोड़े और कहा—महाराज ! पहेलियां न बुझाइये। आप साफ़-साफ़ कहे हम का कर सकत है ?

अचानक भैयाजी ने पुलिसवाले के छुहारे जैसे शरीर से चिपटकर हो-हो करते हुए बड़े हास्यास्पद तरीके से रोना शुरू कर दिया। बोले—पुलिसवाले ! हमे यहां सब कुछ मिला। भारतभूमि से ज्यादा सब कुछ मिला ...पर एक चमचा न मिला। हम तरस गये एक चमचे के लिए।

और इससे पहले कि पुलिसवाला भैयाजी की पकड़ से छूट पाये, भैयाजी ने अफ़सोस की रौ मे नाक सिनक-सिनककर पुलिसवाले की वर्दी से हाथ पोंछना शुरू कर दिया और बड़बड़ाते हुए खुशामद करने लगे—तुम हमारे चमचे बन जाओ पुलिसवाले !

किसी तरह पुलिसवाले ने भैयाजी की पकड से खुद को छुड़ाया और कन्नी काटता हुआ बोला—महाराज ! जान ले लो, पर चमचा बनने को मत कहो। इसी बीमारी के कारन हम यहा आये और अब बीवी-बच्चों से इतनी दूर पड़े हुए है। काहे ? कि उहां जायेंगे तो फिर किसी न किसी उल्लू के पट्ठे का चमचा बनना पड़ेगा।

इतना सुनते ही भैयाजी पुलिसवाले को मारने दौड़े। पर तब तक पुलिसवाला फरार हो चुका था। □□

भारत एक चिन्ताप्रधान देश है

कागज की कमी की बात आपने भी सुनी होगी। डोकरा गोश का कापी-किताब का वास्ते भी कागज नेई। गोया सारी दुनिया जानती है कि कागज का अकाल पड़ रहा है। फिर भी, यानी इस अकाल के जमाने में भी लोग कविता लिखने से बाज नहीं आते। और, कवियों को मारिये गोली (यानी मुहाविरेवाली) आप प्रेमियों को लीजिए (यानी प्रेमियों की बात कीजिए) एक प्रेमी ने हाल ही, यानी पिछले दिनों अपनी प्रेमिका को बारह पृष्ठों का पत्र लिखने की जुर्रत की जो प्रेमिका तक नहीं पहुंचा। रास्ते में पकड़े गये प्रेमपत्र की शुरूआत हजारों बार जुबली मना चुके एक रिटायर्ड बूढ़े शेर से हो रही थी (जिसे कोट करना इसलिए जरूरी है क्योंकि उससे एक राष्ट्रीय संकट—माने कागज का जो है सो—पर प्रकाश यानि कि पड़ता है। शेर था—

कि जमीं कागज़ की हो जाए समंदर रोशनाई का।
कि क्या फिर भी मुकम्मा नई होएगा किस्सा जुदाई का॥

अब बताइये, हो गई न हद्द ! अबे जुदाई के बच्चो ! जमी कागज की हो जाएगी तो खाओगे क्या ? बजट ? अच्छा थोड़ा टैम का वास्ते मान लो के जमी कागज कीच्च हो गयी ! अबी क्या होएगा ? पता चला अनाज की बजाय आकडो की फसल। जागा-जागा अखबारो के पेड़। दरिया के बाजू रंगीन व्यावसायिक पत्रिकाओ के झाड-दरखत, तो दिल्ली मे पाकेट बुक्सो के खजूर और आगरा मे... अबी क्या बोलेगा ? सरसब्ज इलाको मे क्या बोलते हैं लघुपत्रिकाओ की बेले फूट रही है... जिसमे छोटे-छोटे लाल-पीले सम्पादक लटक रहे है। रेगिस्तानी इलाके मे टेक्स्ट बुको की कटीली झाड़िया ! कूआ खोदो तो लाल-नीली स्याही निकलेगी! सरकारी तरफ सू बढ़िया उपजाऊ जमीन पर आर्ट पेपर की खेती ! पब्लिक सेक्टर मे विचार खाद की उन्नत किस्म के कारखाने... ! और गाव मे अधविश्वास का गोबर ! पैसेवालो के यहा मेपलिथो और ओरिएण्ट की खीर और मनलाइट बॉण्ड की शराब....और गरीब लोगो के घर न्यूजप्रिण्ट का दलिया.... ! हाय-हाय ! तालावों के किनारे फुटपाथी साहित्य की काई जमेली है जिसमे रानू-समीर-ये-वो-एण्ड कम्पनी फुदक रहे है ! प्राकृतिक चिकित्सा के सर्वोदयी अखण्ड ज्योतिर्नन्द एक टांग पर खड़े मछलियों की ताक मे समाधिस्थ और महाकाव्यो के जगलो की रॉयल्टी पर ससद मे विपक्ष का कामरोको किवा अविश्वास करो ऐसा प्रस्ताव....।

अबी प्रेमोलोक क्या करेगा ?

ये है मतलब जमी कागज की का। क्या ? पन सोचे कौन ? सोचने से अपन लोक का दुश्मनी जूना। सोचने का काम ठेके पर दिएला है। ये तमारा इन्द्रा गाधी कू, अटलजी कू, डागे भाय कू। आचारिया रजनीस कू। एइसा माफिक लोक कू सोचने का अस्खा कान्ट्रेक्ट दिएला है। क्या ? और अपुन लोग यइमाइच करेंगा जइसा ओ लोग सोचकर बताएगा। वो लोग बोलेगा कूंए मे, दरिया मे छलांग मार दो—अपुन मार देगा।

श्रो लोग बोलेंगा हमेरे हाथ-टांग एड़गा मामिला यॉर्डो का भाग काटने दो तो ? अभी क्या बोलेंगा ?

और जो सोचते हैं वे भी क्या करते है ? चिंतन नही करते, चिंता करते है। उन्हे चिन्तक नही 'चिन्तित' कहना चाहिए। जैसे आपसे मिलिये-ग्राप है भारतवर्ष के महान् चिन्तित श्री....या प्रख्यात चिन्तित.... श्री' '। या जैसे ग्राज शाम को सात बजे टॉउन हॉल मे राजस्थान के महान् चिन्तित श्री ...।

ग्रौर हर कोई इस श्रेणी मे ग्रा सकता है। यह जनरोग है। जैसे अमरीकियो को सनसनी, जापानियों को नम्रता, अंग्रेजों को परंपरा, फ्रांसीसियों को नशा, सेक को मेहमाननवाजी, ग्ररब को ग्रय्याशी, अफ्रीकी को नाच-गान ग्रौर इटालियन को धूमाधाटी बेहद-बेहद प्रिय है, उसी तरह अपना हिन्दुस्तानी चिन्ता का चटोरा है। बगैर चिन्ता किये उसके गले से रोटी नही उतरती। चिन्ता चाहे राष्ट्रीय हो, चाहे अतर्राष्ट्रीय, टुच्ची हो या विराट्, पर होनी जरूर चाहिए। होना इच। मंगता इच।

यह चिन्ताबाज सुबह-सुबह अखबार उठाएगा तो सबसे पहले यह ढूँढेगा कि चिन्ता का मसाला कहा है ? दो देशों मे लड़ाई हो गयी ? सुपर चिन्ता। भारत-पाकिस्तान मे ? सुप्रीम चिन्ता। नही हुई ? सब शान्तिपूर्ण रहा ? धत्तेरे की। दोनों वियतनाम एक हो गये ? गये कहीं के। साइप्रस में युद्ध विराम हो गया ? सालो ने सारा मूड ग्रॉफ़ कर दिया। इतना अच्छा धमाधम चल रहा था। खैर। रेल पटरी से उतरकर ग्ररहर के खेत मे घुस गई ? वेरी गुड ! कोई मरा नही ? घायल भी नही हुग्रा ? क्या यार ! ड्रायवर को मारो साले को पकड़कर। खैर, ग्रागे बढो। व्यापक वर्षा से ग्रच्छी फसल की सभावना ? बकवास ! नये स्कूल खोले जायेंगे ? क्या मनहूस निकला है। एक भी 'इंट्रेस्टिंग' खबर नही। लगता है अखबार के पैसे बेकार गये।

अबी क्या करेगा ? पन नई ! पानी-पीली बूम मारना के वास्ते अखबार वाला लोक को पगार कौन देगा ? पीछू के बाजू धासू खब्बर छपा होएंगा।

अच्छा ? भारत फिर क्रिकेट मे हार गया ? भई वाह ! यह खूब रही। क्यों हार गया ? मौसम ? टीम मे गलत चयन ? टॉस ? कप्तान ? स्पिन ? शराब ? चलने दो, चलने दो, मजा आ रहा है। और हॉकीवालो ! भइया, हम राष्ट्रपति होते तो तुम्हे पद्मश्री दे डालते। तुम्हें क्या मालूम तुमने देश को बातचीत का कितना मसाला दे रखा है !

वैसे इस बात को सम्पादक लोग भी समझते है। इसलिए बलात्कारो की, बहुओ को जलाने की, गले से जजीर उड़ाने की....आदि समाचार प्रचुरता और प्रमुखता से छापते है। जनता मजा लेती है और धीरे-धीरे अभ्यस्त होती जाती है उखाड़ू-उजाड़ू और सनसनीखेज खबरों की। चौकानेवाले लेखन की ओर हाशिए वाली रचना की।

(खैर। पन अबी प्रेमी क्या करेगा ? ढाय ढाय म्यूजिक सुनेगा और ढिशुम ढिशुम फिलम देखेगा। फिर वीडियो गेम मे कार रेस करेगा और ऊसल पाव खाकर प्रेमिका का नाम लेकर सो जाएगा।)

चिन्ता के लिए प्रचुर मात्रा मे सामग्री मिल गयी। अब हम सोफे पर पसरकर ठाठ से चिन्ता करेगे। चिन्ताओ को जुगालेगे। चिन्ताओ से घर आये मेहमानो का स्वागत करेगे। कही गये तो वहा भी थोड़ी-सी बिखेर आयेगे और दिनभर बड़े भक्तिभाव से अपने सब मिलनेवालो को चिन्ता की पंजीरी बाटेगे। जो शरीक नही होना चाहेगा चिन्ता मे, उसे अनाधुनिक और फूहड़ मानेगे। यही हमारे मानवता प्रेम और आधुनिकता वगैरह की कसौटी है।

और ऐसे मे अगर मैं हँस दू ? तुम कइसा बात करता है भाय ! लाइफ साला अक्खा दीमाग खराब करेला है और अपनकू हँसने का

मांगता है ? अबी जास्ती गाली नइ आने का होए तो एक काम करने का। हँसी आये ना....तो उदर लेट्रीन मे जाके हँसने का। अपुन भी एसाइच करता। क्या ? चार सीरियस लोक का सामने दांत दिखाने का.... मझे....अबी क्या बोलेगा ?

और साहब ! यह बहुत बड़ा महत्वपूर्ण नुक्ता है। अपने बुद्धिजीवी किस्म के लोगों का खयाल है कि हँसना एक बूर्जुआ, पूंजीवादी मनोवृत्ति है। देखते है न आप....विनोद और हास्य पत्र-पत्रिकाओं से....साहित्य से....जीवन से गायब होता जा रहा है। हास्य के लेखक ? गिने चुने। हास्य की फिल्मे ? गिनी चुनी....हास्य की पत्रिकाए ? एक भी नही। यह कौम हँसना भूलती जा रही है। पशु नही हँसते, हम भी नही हँसते। एक थे साहब शकर। महान कार्टूनिस्ट। उन्होंने एक पत्रिका निकाली थी—शंकर्स वीकली। हिन्दी मे भी निकाली। ग्यारह महीने मे टें बोल गयी। और आवाज की रफ्तार के बाद जिसकी सबसे ज्यादा तेज रफ्तार है—लतीफों की—उनके घिसे-पिटेपन और अकाल की तो बात ही क्या की जाये ?

शायद कुछ लोग सोचते है कि चूकि दुनिया मे सभी लोग हँस नही सकते इसलिए हँसना एक गुनाह है। और चूकि दुनिया मे सभी लोग थोड़ा बहुत रो सकते है इसलिए रोना ही हमारा वास्तविक जनवादी कर्तव्य है। पर चूकि पूरी तरह और हमेशा रोया भी नही जा सकता, इसलिए रोनी सूरत तो बनाकर रखनी ही चाहिए। इस प्रगतिशीलता को अबी क्या बोलेगा ?

अच्छा चलो, गणित से समझाते है—

यह तो स्वयंसिद्ध बात है कि दुनिया मे सुख की अपेक्षा दुख अधिक है, अर्थात् रोदन हास्य मे अधिक है। अब सारी दुनिया के रोदन को बराबर-बराबर बाट दीजिये और हँसी को भी बराबर-बराबर बांट दीजिये।

स्पष्ट है कि रोदन हास्य से ज्यादा ही होगा। अब रोदन में से हास्य को घटा दीजिये। कुछ रोदन ही बच रहेगा। इसका मतलब यह हुआ कि जो कुछ मिलेगा उससे फूट-फूटकर तो नही रोया जा सकता, पर चेहरा जरूर रुआंसा बना रहेगा।

ऐ भाय ! ये कुटेशन कौन का मारे ? क्या बताऊ भाय ! अबी अपुन को हँसने-रोने का मामला में कोई ऑथॉरिटी मानताइच नहीं। ये करके हजारीबाबू का मैथेमेटिक्स मार लिये। मार लिये तो हँसते-हँसते कि रोते-रोते ?

अबी क्या बोलेगा ?

अच्छा चलो ! अबी एक इस्टोरी मारेगा फिर बात खलास करेगा। बोलो रे !

इस देश के महान् चिन्ताबाज स्वर्गीय गुरूजी के मकान मे एक बार आग लग गयी। आग बुझाने की कोशिश करने या जलते मकान से बाहर निकल आने की बजाय एक सच्चे और आदर्श चिन्ताबाज की तरह स्वर्गीय गुरूजी इस बारे मे इत्मीनान से चिन्ता करने बैठ गये। खिड़किया गिरी, दरवाजे जले, जीना भी जलकर गिर पड़ा। छतो के शहतीर भी टूट-टूट कर गिरने लगे। गुरूजी की चिन्ता चलती रही।

अब गुरूजी अगर गुरूजी थे, तो उनके कुछ शिष्य भी थे। वे चिन्ताबाज तो थे पर कच्चे थे। वे कही से एक मजबूत-सी तिरपाल ले आये *और गुरूजी के मकान की तरफ लपके। गुरूजी तपती छत पर बैचैनी से* टहलते हुए चिन्ता कर रहे थे। शिष्यों ने तिरपाल नीचे फैला ली और चिल्लाकर कहा—गुरूजी ! मकान जल रहा है, इस तिरपाल पर कूद जाइये। अगर जान बचाना चाहता है तो देर न कीजिये।

गुरूजी ने अपने शिष्यों की कारगुजारी को ध्यान से देखा और जवाब दिया—भई ! कूद तो मैं जाऊँ पर पहले ये बताओ वहा मुझे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मिलेगी या नहीं ?

शिष्यों ने जवाब भी दिया पर या तो वह गुरुजी तक पहुंचा नहीं, या उन्हें उस पर विश्वास नहीं हुआ, या वे उसे समझे ही नहीं। नतीजा यह निकला कि नीचे आने की बजाय ऊपर पहुंच गये। मुन मरे और 'स्वर्गीय' कहलाये।

इतनाइच !

[प्रिय पाठक ! यह निबंध दो जनों ने मिलकर लिखा है। आपने देखा होगा जब मैं बोल रहा था एक आदमी बीच-बीच में टांग अड़ा रहा था। बड़ा मसखरा है। मित्र है। मेरे साथ ही रहता है। उसका नाम है.... अबी क्या बोलेगा ?]

जीव और जीवी

एक नेता थे। कई दलों की शोभा बढ़ाई, अनेक बार शपथ ग्रहण की और कुछ बार पदत्याग भी किया, पर हमेशा ऊपर ही रहे। जैसे फिल्मों में मौकिया हीरो भी कभी पराजित नहीं होता....नेताजी राजनीति के शाश्वत दारासिंह हैं।

एक बुद्धिजीवी भी थे। यों अध्यापक थे किन्तु नाम के आगे प्रो. लगाते थे और डाक्साब कहलाना पसन्द करते थे। उनका जबर्दस्त खयाल था कि उनके पास बुद्धि भी है। बल्कि उन्हीं के पास बुद्धि है, बाकी दुनिया तो बगैर डबल स्टोरी के ही काम चला रही है।

एक बार दोनों सज्जन टकरा गये। सड़क पर। दोनों के बीच यह बातचीत हुई—

—आज गर्मी बहुत है! बुद्धिजीवी ने कहा।

—जी हां। नेता ने जवाब दिया।

—जी हां का क्या मतलब? आपके लिए क्या गर्मी है?

—हां, आप ठीक कहते हैं। हमारे लिए क्या गर्मी ? न मंत्रिमंडल में कोई फेरबदल हो रहा है, न कोई चुनाव-उपचुनाव नजदीक है।

—तो चुनाव मे गर्मी रहती है ?

—आपका क्या विचार है ?

—चुनाव में कोई गर्मी-वर्मी नहीं रहती।

—जी हां। असल गर्मी तो पहले ही निबट चुकी होती है। जब टिकट बंटते हैं।

—क्या बहूदा बात करते हैं ? पब्लिक तो तभी सचेत होती है न जब चुनाव होते हैं ?

—आप ठीक कहते हैं।

—क्या आप ठीक कहता हू ? मैं कभी कोई बात ठीक नहीं कह पाता। यही तो मेरी ट्रेजेडी है। मैं इसके लिए अभिशप्त हूं।

—हां, यह तो है। अक्सर आपसे ऐसा हो जाता है।

—पर ये आप कैसे कह सकते हैं ? आप समझते क्या है ? आपने पढ़ा क्या है ? आप पढ़कर आइये फिर बात कीजिये।

—यही बात है। मैं पढ़ने के लिए समय नहीं निकाल पाता। पिछले साल एक सम्मेलन की स्मारिका लाया था। अभी तक नहीं पढ़ पाया। अब पढ़ूगा।

—आप घोंचू हैं। संक्षेप मे।

—ठीक कह रहे हैं। पर आप शायद भूल रहे है कि मैं आपके नाम पर इस सड़क का नाम रखवा सकता हू। नगरपालिका अभी अपने ही हाथ में है।

—ऐसी गंदी सड़क ! और मेरे नाम ? और सिर्फ सड़क ? !

—अरे सुनिये, सुनिये.... ! जा कहां रहे है ?....अच्छा नमस्कार।

□□

महीने भर बाद फिर दोनों की भेंट हो गयी। अचानक। फिर सड़क पर। तब दोनों के बीच यह बातचीत हुई—

—आप कौन से कॉलेज में हैं ? नेता ने पूछा।

—मैं किसी कॉलेज में नहीं हूं। मैं एक कबूतरखाने में हूं। बुद्धिजीवी ने कहा।

—आप ठीक कहते हैं। कॉलेज और कबूतरखाने में....

—चुप रहिये ! ये हालत की किसने है ? आप ही लोगों ने।

—हां, यह तो है। यदि शासन....

—आप हमेशा मुझे गलत समझते हैं। सब मुझे गलत समझते है। गलत समझा जाना हमारी नियति है। हम इसके लिए अभिशप्त हैं।

—हां, यह तो सच है। पर आप सबकी परवाह क्यों करते है ?

—किसने कहा मैं सबकी परवाह करता हूं ? मैं किसी साले की परवाह नहीं करता।

—हां, किसी साले की परवाह नहीं करना चाहिए।

—इसी चीज ने आज हमें यहां ला दिया। यह अवसरवादियों का उसूल है।

—यह तो है। अवसरवादी नहीं होना चाहिए।

—क्यों नहीं होना चाहिए ? मैं कहता हूं जो अवसर का लाभ नहीं उठायेगा वह जिन्दा नहीं रह पायेगा।

—ठीक बात है। जीव जीवस्य भोजनम्।

—संस्कृत मत बोलिये।

—बस ! संस्कृत अपनी नेशनल टंग नहीं है।

—आप भयंकर मूर्ख हैं।

—संभव है, पर मैं आपको फैलोशिप दिला सकता हूं। आपके मिनिस्टर मेरे समधी हैं।

—क्या एहसान करेंगे ? आप साठ के हो रहे हैं। नहीं हो रहे हैं तो कभी न कभी तो हो ही जायेंगे। तब अपना अभिनन्दन लिखवाने तो मेरे पास ही आयेंगे।

—हां, बशर्ते आप यही रहें। गांव मे आप जैसे योग्य अध्यापकों की बहुत जरूरत है।

—आप मुझे धमकी दे रहे हैं?

—एक बात कह रहा हूं।

—इस व्यवस्था मे और आशा भी क्या की जा सकती है?

—अरे सुनिये, सुनिये....जा कहां रहे हैं?....अच्छा नमस्कार

□□

एक महीने बाद फिर उनकी भेंट हो गयी। फिर सड़क पर। इस बार ये बातें हुईं—

—क्या हालचाल है? बुद्धिजीवी ने पूछा।

—नगरपालिका के चेयरमैन के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाने की कोशिश कर रहा हूं। वह भ्रष्ट है। उसने हमारे ब्रदर-इन-लॉ को ठेका नही दिया।

—आप टुच्ची बातों से कब ऊपर उठिएगा?

—उठता हूं। देश का समाचार यह है कि सर्वत्र वर्षा अच्छी हो रही है। यह हमारी नीतियों की सफलता है। श्रीमती गांधी की सफलता है। मैंने राजीवजी को बधाई और धन्यवाद का तार कर दिया है।

—मैं यहां की नही, दुनिया की पूछ रहा हूं। अंगोला का क्या हो रहा है?

—सुना है, वह मंगलग्रह पर उतर गया।

—ओ गॉड! मैं भी कहां फंस गया। और, आप तो अपने पार्टी प्रोग्राम के बारे में ही बताइये।

—उस बारे में मैं कुछ नही जानता। जरूरत भी क्या है? इंदिरा जी है ही।

—आपको मालूम है शहर में मच्छर कितने बढ़ गये हैं? मलेरिया फैलने का डर है।

—यह जनता शासन की गलत नीतियों का परिणाम है। या इसमें

विदेशी शक्तियों का हाथ है। या विरोधी हमे बदनाम करने के लिए मच्छर छोड़ रहे है। मैं प्रेस को एक वक्तव्य दिये देता हूं....

—माफ कीजिए, आप एक महान् मूर्ख है। ऐतिहासिक मूर्ख है।

—शुक्रिया।

—पर आप हर बात से सहमत क्यों हो जाते है? असहमति से इतना डरते क्यों है?

—क्योंकि मै नेता हू। और अब आप बताइये कि आप हर बात पर असहमत होने की कसम क्यों खाये हुए है। सहमति से डरते क्यों है? .. क्योंकि बुद्धिजीवी है। है न?

—नमस्कार।

—नमस्कार। फिर मिलिएगा। आपसे बातें करने मे बहुत आनन्द आता है।

□□

शीशी में शिशु

हमारे दोस्त भाई शंकराचार्यजी बड़े मजेदार आदमी हैं। खामोशी से बोर होने लगते है तो कोई उचंग सूझ जाती है। अभी पिछले दिनों विलायत मे जो कुछ हुआ, आपने भी पढा होगा। म्लेच्छों ने शीशी में शिशु पैदा कर दिया। वे शीशू भी पैदा कर सकते थे। पर उन्होंने शिशु ही किया। सो भी कन्या! इस इशू पर हमारे दोस्त भाई शंकराचार्य ने बड़ा जोरदार वक्तव्य दिया। हमारा मनोरंजन हुआ। हम उनके आभारी हैं।

उन्होंने फर्माया कि इसमें क्या बात हो गयी ? महाभारत काल मे कौरव भी तो ऐसे ही पैदा हुए थे। यह शीशी मे हुई, वे मटके मे हुए थे। बोलो कौन बड़ा ? शीशी कि मटका ? हम कहेंगे और मटक मटक कर कहेंगे—मटका।

भाई शंकराचार्य ने यह भी कहा कि पश्चिमवाले यह सारा ज्ञान वेदों से, पुराणों से ही ले गये है। कितनी अच्छी बात कही। मेरा दावा

है कि आज से पचास साल बाद या सौ साल बाद भी पश्चिम के वैज्ञानिक जो हरकतें करेंगे—वे भी हमारे वेदों में है। हम अभी नही बता सकते कि क्या-क्या हैं। पर जब वे कर गुजरेंगे तब जरूर बता देंगे।

अब लोगों का कहना है कि इस बात पर तो हमें भाई शंकराचार्य को महान् घोषित कर ही देना चाहिए। पर मैं इसके पक्ष में नही हूं। क्योंकि महान् तो हर कोई हो जाता है। मिसाल के तौर पर महात्मा गांधी भी महान् थे। फिर क्या फायदा हुआ महान् होने का ? नही, भाई शंकराचार्य महान् से भी ज्यादा कुछ हैं।

और जाहिर है, ऐसे लोग सूत्रों में बोलते है। सूत्रभाषी। विस्तार से समझाने का काम दूसरों पर छोड देते है। मैं सहर्ष यह भार उठाता हूं। मुझसे उठ भी जाएगा। अब सुनिये। भाई शंकर चाहे कहें नहीं, हकीकत यह है कि भारत की हर महान् आत्मा, हर महान् पुरुष मटके में ही पैदा हुआ। कई मटके में ही रह गये वैसे। पर कई मटका फोड़कर बाहर आ गये। उस जमाने में ऐसा ही फैशन था। जन्म के साथ जुडी कहानियां महानता का पथ प्रशस्त कर देती थीं। जैसे माता सीता। जो जमीन से ही निकली और धोबी तथा रावण का सत्यानाश करके जमीन में ही घुस गयी। उनके पतिदेव और देवर एक तपस्वी द्वारा दी गयी एक खीर विशेष से पैदा हुए थे और उनके पुत्र 'कुश' नामक घास से। यह सिलसिला कमोबेश आज भी जारी है। इमर्जेन्सी के मटके से जनता पार्टी पैदा हो जाती है और प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्रियों की कुर्सी से 'उपजे पूत कमाल'! जो देश 'गरीबी हटाओ' में से देशरत्न तुलमोहनराम और दूसरी आजादी में से स्वमूत्रपान पैदा कर सकता है, उसके लिए पश्चिम की यह हरकत कोई चमत्कार नही। हमारे कन्हैया के पास तो न जाने कितनी अपनी मटकियां फुड़वाने आती थी।

दूसरी बात ! शिष्टतावश भाई शंकराचार्य जिस बात पर मौन साध गये, उस रहस्य पर से मैं परदा उठाये देता हूं। हकीकत यह है

धर्मप्रेमी सज्जनो ! कि जब अंग्रेज आये और उन्होंने सुना कि इनके यहां तो मटके में भी बच्चे हो जाते हैं, और मटका तो मटका, कान से भी बच्चे हो जाते है, तो वे चक्कर में पड़ गये। उन्होंने पता लगाया कि ये वेद पुराणादि नाना निगमागम आखिर रक्खे कहाँ है ? फिर उनकी चोरी करवाई। उन्हें स्पेशल हवाईजहाज से विलायत ले गये। संस्कृत सीखकर उन्हें पढ़ा। मोक्षमूलर नामक व्यक्ति से उसका अंग्रेजी में अनुवाद करवाया और अपने वैज्ञानिको को दिया कि लो, पढ़ो, इसमें सब कुछ है। धीरे-धीरे एक-एक चीज निकालते जाओ और अपने नाम से दुनिया को दिखाते जाओ। वह दिन है और आज का दिन है। कोई कॉलेज वहां का ऐसा नही जिसमे विष्णु पुराण न पढाया जाता हो ! कोई रिसर्च सेण्टर ऐसा नही जिसमें हनुमानचालीसा आपको न मिल जाय और कोई प्रयोगशाला ऐसी नहीं जिसमें चारो वेद न हों ! चाहे इण्टरकॉण्टीनेण्टल मिसाइल हो चाहे पोलियो का टीका, चाहे न्यूट्रॉन बॉम्ब हो चाहे रंगीन टीवी....सब वेदों में था।

कितने अफसोस की बात है कि मटका अब सिर्फ रतनलाल खत्री के पास रह गया है और उसमें से जाने क्या-क्या पैदा हो रहा है। इस बारे में हमें जनमत तैयार करना चाहिए।

लेकिन शीशी में शिशुवाले मामले में जरा-सा पेच है। बात यह है कि जब वैज्ञानिक समुर प्रयोगशाला में ही बच्चा बना लेगा तो सवाल यह उठेगा कि उसके पास बच्चे में डालने के लिए आत्मा कहां से आयी ? और यदि उसने आत्मा भी बना ली तब तो गड़बड़ हो है। आत्माओं का मास प्रॉडक्शन होने लगा तो पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरक वगैरह का भट्टा बैठ जाएगा। चौरासी करोड़ योनियों की मठ मिल जाएगी। तब सवाल यह भी उठ सकता है कि आज से बीस साल पहले दुनिया की आबादी दो अरब थी, अब तीन अरब है, तो ये एक अरब एक्स्ट्रा आत्माएं कहां से आ गयी ? लोग पूछेंगे कि क्या आत्माओं की आबादी भी बढ़ रही है ? या किसी

विशेष देश की आत्माएं परिवार नियोजन के सरल अथवा जटिल साधनों का प्रयोग करती है, अन्य की नहीं ? और तब तो वैज्ञानिक ससुर योजना बनाकर बता देगा कि आनेवाले पाँच वर्षों मे इतनी आत्माएं बढ़ाने का हमारा लक्ष्य है। सो भी नर हो या नारी, यह हम तय करेंगे। धन्य हो ! भ्रष्ट लोग ऐसी-ऐसी बातें करते है कि हमारे परम मित्र भाई शंकराचार्य परेशान हो जाते है।

लेकिन वैज्ञानिकों को यह नहीं मालूम कि भाई शंकराचार्य जगद्-गुरु बजते है। गुरु आदमी है। कुछ वर्ष पूर्व यह शंकराचार्य ही थे जिन्होंने संविधान का अपमान किया था, छुआछूत का पक्ष लिया था और राष्ट्रगान का असम्मान किया था। क्या बिगाड़ लिया किसी ने उनका ? कोई और होता तो कब का हरगंगे हो जाता, पर भाई डटे हुए है। वह इस समस्या का भी कोई न कोई हल निकाल ही लेंगे। जहां तर्क किसी का चले नहीं, शंका किसी को करने न दी जाये, जिज्ञासाएं भी बाड़बन्द हो वहां भक्तों को संतुष्ट करना क्या मुश्किल है ? मुख्य प्रश्न यह है भी नहीं। मुख्य प्रश्न तो यह है कि कब तक पश्चिम हमारे वेदों की पाकिटमारी करता रहेगा और हम मुंह देखते रहेंगे ? यह दादागिरी कब तक चलती रहेगी ? हमारा विनम्र विनम्र सुझाव है कि आज अपने को एक बार फिर जगद्-गुरु होने की ट्राइ करनी चाहिए।

इसके लिए मुख्य रूप से दो बातों पर ध्यान देना होगा। एक तो हमारा चरित्र। और दूसरे हमारी शिक्षाप्रणाली। जहां तक चरित्र की बात है तो सब जानते हैं कि उसके लिए सबसे पहले लड़कियों का स्कूल-कॉलेज जाना, नौकरी करना, आजादी से घूमना-फिरना बन्द करना पड़ेगा। वहीं जाकर लड़कियां बिगड़ती हैं और फैशन सीखती हैं। वैसे भी महिलाओं का कार्यक्षेत्र घर है। चूल्हा, बासन और बच्चे-कच्चे। क्योंकि अक्ल उनकी एड़ी में रहती है और एड़ी में ही रहनी चाहिए। वरना वे पति को परमेश्वर नहीं मानेंगी और आर्यपुत्रों से पोतड़े

धुलवाएंगी। शुरू-शुरू में हम 'घर ही तुम्हारा कार्यक्षेत्र है' वाली बात किसान-कन्याओं को नहीं समझा सकेंगे, मेहतरानियों, धोबनों, कुजड़िनों, दाइयों, नर्सों, बीड़ी बनानेवाली और ईंट उठानेवाली और मिल में जानेवाली मजदूरनियों को भी नहीं। पर कोई बात नहीं। पहले शहर की मध्यवर्गीय महिलाओं का चरित्र सुधर जाये, फिर दूसरियों का भी वन बाइ वन सुधार लेंगे।

अब रहा सवाल शिक्षा का, तो हर्ष का विषय है कि हमारे नेता अब विज्ञान और वैज्ञानिक जीवन दृष्टि छोड़कर प्रकृति की ओर लौट रहे हैं। कई नेता स्वमूत्र पी रहे हैं और उसका देश पर प्रभाव व्हाया उनके दिमाग भी किसी से छिपा नहीं है। जिस देश का प्रधानमंत्री चमत्कारों में विश्वास ही नहीं, चमत्कारों में अपने विश्वास का सार्वजनिक प्रदर्शन भी अशोभनीय न माने, उस देश का भविष्य उज्ज्वल है। भविष्य को झख मारकर उज्ज्वल होना पड़ेगा। नेहरूजी इस मामले में बिल्कुल नास्तिक थे। सुश्री इंदिरा देवी भी संतों के पांव जरूरी छूती थीं किन्तु दिल से इनकी इज्जत नहीं करती थी। खैर अब ठीक है। मेरा और भाई शंकराचार्य का विश्वास है कि भारत के भावी शासक भगवान् की कृपा से शीघ्र ही गुरुकुल की स्थापना करेंगे और उनमें सिर्फ ब्राह्मणों और क्षत्रियों को प्रवेश मिलेगा।

इन गुरुकुलों में फिजिक्स, डायनामिक्स और इलेक्ट्रॉनिक्स के स्थान पर गरुड़ पुराण, मनुस्मृति और वशीकरण विद्या सिखायी जाएगी। इसी तरह हम महान् और जगद्गुरु हो पायेंगे। कितने हर्ष की बात है कि हमारे विद्वान् वर्तमान शासकों ने आते ही उस किताब को कोर्स से निकाल दिया जो हमें बताती थी कि आर्य लोग और उनकी महिलाएं भी गोमांस खाते थे। हालांकि ठीक है, खाते थे, पर उसका ढिंढोरा पीटने की क्या जरूरत है? किताब कहती थी शिवाजी और राणा प्रताप हिन्दू नेता नहीं, दिल्ली द्वारा सताये गये शोषितों के नेता थे क्योंकि शिवाजी और राणा

प्रताप दोनों की फौज में मुसलमान भी थे और दिल्ली की फौज में हिन्दू भी। मैं वर्तमान शासकों को बधाई देता हूं कि उन्होंने इन बेहूदा तथ्यों को नई पीढ़ी तक जाने से रोका।

बृद्धशिक्षा का जो कार्यक्रम अभी शुरू हुआ है, बहुत उत्साहवर्धक है। मरना तो उन्हें है ही, अनपढ़ रहकर क्यों मरें? और यह काम समाजसेवी संस्थाओं से अच्छा कौन कर सकता है? कटने दो चैक पर चैक। कैश हो तो सोने में सुहागा। सोने का महत्व पटेल साहब ही नहीं, पूरा हिन्दुस्तान जानता है। बैल आदतन चल रहे हैं और गाड़ीवान सदियों से सो रहे हैं। और क्या चाहिए?

मेरा और भाई शंकराचार्य का विनम्र आदेश है कि दिल्ली अब अश्वमेध यज्ञ भी कर डाले। श्री राजनारायण मुख्य अतिथि हो सकते हैं। पौरोहित्य के लिए मैं भाई शंकराचार्य को पटा लूंगा। बतौर समिधा भारतवर्ष के चालीस प्रतिशत जन, यानी लगभग बीस करोड़ जन अपना एक समय का भोजन देंगे। जिन्हें वह भी नसीब नहीं, वे अपनी हड्डियों के कड़कड़ाते ढांचों जैसे बच्चे दे सकते हैं। और यज्ञ जैसे पुनीत कार्य के लिए यदि उनकी चर्बी (जितनी भी हो) कम पड़ जाये तो बनस्पति घी तो है ही। ओम् शान्ति शान्ति शान्ति !!

श्रृंखला की समाप्ति पर

एक और श्रृंखला समाप्त हुई। श्रृंखला की समाप्ति पर स्वस्थ व्यवसायियों द्वारा घायल खिलाड़ियों को पुरस्कार दिये गये। जीतनेवाले कप्तान और हारनेवाले कप्तान ने मुस्कराते हुए वक्तव्य दिये, जाम उठाये और हाथ मिलाकर 'फिर मिलेंगे' कहा। जीतनेवाला दार्शनिक होकर जीत का श्रेय अपने साथियों को बांटता रहा। हारनेवाला निर्विकार-निर्लिप्त हो गया और उसने सूफी संत की-सी मुद्रा में कहा—वे हमसे हर क्षेत्र में बेहतर थे। इस तरह मातम और मौज मस्ती की मिलीजुली महानता में एक और श्रृंखला समाप्त हुई।

इस श्रृंखला में हमने अतिथि सत्कार की अपनी महान् परंपरा को कष्ट उठाकर भी कायम रखा। हम खुद भले हार गये, पर मेहमानों को विजय-सुख से वंचित रखने का कुकृत्य हमसे नहीं हुआ। हम खेल को खेल की भावना से खेले और यथासंभव उसे गंभीरता से नहीं लिया। हमने कर्म किया, परिणाम की चिन्ता नहीं की। जहां संसार एक रंगमंच हो

और जीवन एक अभिनय, यहां हार जीत का क्या रोना ? और अभी से क्या रोना ? और भी श्रृंखलाएं होंगी। और भी रोने के अवसर आयेंगे।

श्रृंखला दिलचस्प और ज्ञानवर्धक रही। श्रृंखला के प्रारम्भ में हमें सूचना थी कि आगन्तुक टीम एक कमज़ोर और दूसरे दर्जे की टीम है। श्रृंखला की समाप्ति पर पता चला कि वह दूसरे दर्जे की टीम नहीं है। और है भी, तो हर क्षेत्र में हमसे बेहतर है। श्रृंखला के प्रारम्भ में हम अमुक साहब को कप्तान बनाये जाने का अभिनंदन कर रहे थे, श्रृंखला की समाप्ति पर हम जूते हाथ में लेकर उन लोगों को ढूंढ रहे हैं जिन्होंने अमुक साहब को कप्तान बनाया। कप्तानी बाहर निकाले जाने का दरवाज़ा होती है। चयन समिति कहती है श्रीमन्, आप बहुत बोर कर चुके, लीजिये, उठाइये देश के टीम की कप्तानी और अपना मुंह काला कीजिए। इस श्रृंखला में तो ऐसा भी हुआ कि कुछ साहबान अभूतपूर्व बनने के चक्कर में भूतपूर्व हो गये। आज जिसका मुंह काला किया गया है, कल वह स्वयं चयनकर्ता बन जाएगा और खिलाड़ियों के साथ वही सलूक करेगा जो एक काले मुंहवाला दूसरे काले मुंहवाले के साथ करता है। राष्ट्र की प्रतिष्ठा के लिए यह सब ज़रूरी है।

लेकिन इस श्रृंखला में कुछ नयी बातें भी हुईं। एक सफल छक्के और दूसरे असफल छक्के के उड़ते ही चयन समिति ने एक भूतपूर्व कप्तान का नाम टीम से उड़ा दिया। एक ज़माना था जब छक्का क्रिकेट की शान हुआ करता था। छक्का पड़ने पर ही दर्शक 'पैसे वसूल हुए' ऐसा मानते थे। छक्कों के बारे में किंवदंतियां प्रचारित होती थीं। मसलन् अमुक सन् में अमुक मैदान पर मुश्ताक अली ने ऐसा छक्का मारा कि मैदान के बाहर खड़े होकर खेल देख रहे एक टाउन हॉल की घड़ी का कांच बॉल ने फोड़ दिया। जबकि टाउन हॉल बेचारा काफी दूर खड़ा था। लोग उस पर खूब हंसे। या अमुक सन् में लार्ड्स के मैदान पर कर्नल सी. के. नायडू ने ऐसा छक्का मारा कि बाल ही खो गयी और पुरस्कारस्वरूप उस स्ट्रोक

पर उन्हें बारह रन दिये गये। उनसे बॉल के पैसे भी नहीं लिये गये। या टायगर पटौदी ने फलां सन् मे कलकत्ता मे ऐसा छक्का उड़ाया कि बॉल जाकर सीधी सौभाग्याकांक्षिणी शर्मिला ठाकुर की गोद में गिरी आदि आदि। भूतपूर्व क्रिकेट खिलाडी और अभिनेता सलीम दुर्रानी का भी यह हाल था कि वह मैदान मे आते और आवाजें चालू हो जाती—'छक्का वांटेड' ! और जिधर से आवाज आती वह उधर ही छक्का उड़ाते। और पांच-दस मिनट तक यह जिम्मेदारी भरा कार्यक्रम सम्पन्न कर पूर्ववत् पवेलियन मे बैठ कोकाकोला पीने में निमग्न होने चले जाते।

लेकिन लगता है भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड का नजरिया इस बीच बदल गया है। शायद वे सोचते है कि अब छक्कों का जमाना नही रहा। इस बारे मे हमारे-उनके विनम्र मतभेद हो सकते हैं, पर मुख्य बात यह थी कि जब दुनिया इस बात पर सर फोड़ रही थी कि भूतपूर्व कप्तान को खेल की वजह से हटाया गया या अनुशासन की वजह से, उस समय उन्होंने एक ऐतिहासिक कार्य किया कि अपने शहर गये और कांग्रेस आई मे शामिल होने की घोषणा कर दी। अब बोलो ! अब कर लो बात ! उधर भी कुछ रौनक होना। राजनीति में भी कुछ ग्लैमर होना के नईं होना ? बस, अब वह दिन दूर नही जब शतक मारने के फौरन बाद खिलाड़ी कहेगा मैंने तो ऐसा राजीव गांधी के हाथ मजबूत करने के लिए किया। जैसा कि सब जानते है, नेताओं के हाथ वैसे भी बहुत कमजोर होते हैं, जगह-बेजगह फँस जाते हैं, इस या उस लफड़े मे रंग जाते हैं.... इसलिए खिलाड़ी यदि सार्वजनिक रूप से उन्हें मजबूत करने की कोशिश करें तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

श्रृंखला की समाप्ति का अर्थ ही है विश्रृंखलित हो जाना। या उश्रृंखल हो जाना। भारतीय सन्दर्भ में दो कप्तानों की सौतिया दाता-किलकिल ने इसे इस बार सिद्ध कर दिखाया। जब दूसरे सारे खेल आयोजकों-चयनकर्ताओं-सरक्षकों की धींगामुश्ती के शिकार हो गये तो भई

क्रिकेट ! तू ही क्यों बनी रहे ? तूने ही क्या बिगाड़ा है ? अतः खिलाड़ी पाच दिवसीय को एक दिवसीय और एक दिवसीय को पाच दिवसीय की तरह खेलेंगे। क्योंकि कमेण्टेटर फिर भी उनकी प्रशसा करेंगे, विशेषज्ञ फिर भी उनका कोई न कोई औचित्य साबित कर देंगे, चयनकर्ता फिर भी उनकी हाजी हाजी कर लेंगे, विज्ञापन कम्पनिया फिर भी उनके पीछे दौड़ेंगी, हीरोइनें फिर भी उन पर दिल इत्यादि फेंकती रहेंगी और देश फिर भी क्रिकेट बुखार में डूबता-उतरता रहेगा।

जितने दिन श्रृंखला चली, देश मे कर्मठता, लगन, सुख और उत्तेजना का वातावरण बना रहा। न किसी ने रोटी मागी न नौकरी, न आजादी न सम्पन्नता। सब इस सुसभ्य खेल को देखने-सुनने मे लगे रहे। हा, कुछ जासूस जरूर अपनी कारगुजारियों मे मशगूल रहे और देश के कुछ सुपरिचित रहस्य वसुधैव कुटुंबकम की भावना से अपने बापो को पहुचाते रहे। जासूसो से निवेदन है कि जब खेल चल रहा हो, वे पकड़े जाकर देश को डिस्टर्ब न करें। युवा वर्ष मे युवा पीढ़ी उत्तिष्ठत् जाग्रत होकर कपिल-गावस्कर होने की चेष्टा कर रही है।

दीवाल और ई की माला के बारे में

अहा ! फिर दीवाली का सीजन आ गया। राम अयोध्या लौटे वगैरह-वगैरह। अहा ! लाओ रे लाओ ! उधार की लिस्ट लाओ। आओ सखि आओ। टायरों की गिनती आना। कितने का जूता पड़ने वाला है बताओ। हिसाब लगाओ। आओ बजट बनायें और खर्च करने से पहले ही दुखी हो जायें। हे अलि, उधर देख, बाजार में कितनी रौनक है ? यह सेठ इस साल पांच हजार की लाइटिंग करेगा। परसों इसके तीनों लड़के मद्रास से लौटे हैं। तीनों आठवीं पास नहीं फेल हैं। ये एक हजार रुपये के पटाखे जलायेंगे। कुछ विशेष पटाखे जलाकर रोशनी देखने निकली महिलाओं पर फेंकेंगे। इनमें से बड़े की बीवी कम दहेज लायी थी। उसे पिछले साल रसोई में ही रोशनी दिखा दी गयी। भगवान् हर किसी को ऐसी होनहार औलाद दे। तू इनके दिल-दिमाग को नहीं, कपड़ों को देख। और अपने बच्चों के चिथड़ियाए वस्त्रों को देख कर मत कुढ़। यह दीवाली है।

दुबई और अबूधबी के पुल जो निगोडी इमर्जेन्सी ने तोड-से दिये थे, फिर जुड गये है। सडक चौडी हो गयी है। उस पर मर्सडीज गुर्रा रहे है। हर तरफ बहार है। जिनके पास तेल का थोडा-सा भी स्टॉक था, उन्हें वग़ैर हाथ-पैर हिलाये लाखों का मुनाफा हो गया है। 'लाभ शुभ' अब 'लाभ सुख' हो गया है। सैंयाजी कोतवाल बन गये है। उछाल के नये कीर्तिमान हर दूसरे दिन पुराने हो रहे हैं। अपने पास सिर्फ़ बेवकूफियों का स्टॉक था। उसका बाजार ठप्प है। माल ज्यादा है। खपत कम। सबके पास है। हमसे कौन खरीदे? ख़ैर, चलता है।

दीवाली तो आ ही गयी! सखि! इस बार अपन स्वमूत्र से दीपक जलायेंगे। तुम अपना और बच्चों का स्टॉक तैयार रखना। यही पेय-77 है। जिन गांवों में तीस साल तक पीने का पानी नहीं पहुंचा, वे रोना बंद करें और गिलास लेकर प्रकृति की शरण में जायें। पाखाना हमारा राष्ट्रीय खाद्य घोषित हो सकता है। इसका भविष्य उज्ज्वल है। शादी-ब्याह और दावतों में खाली प्लेटें और खाली गिलास परोसे जायें। मेजबान अतिथियों से कहें—लीजिये हुजूर! हगिये और खाइये। हेल्प योर सेल्फ़। शिवांबु पीकर तरोताजा हो जाइये। यही हो। पुनिपुनि यही हो। सखि, मैं चक्र योजना का पूरा अर्थ समझ गया हूं। अब हमारा काल टल गया समझो। दीवाली आ गयी है।

सुभगे! हर तरफ रौनक और जिन्दगी की इफ़रात है। सराफ़े सट्टों के शोर से गुलजार हैं, तो यूनिवर्सिटियां हडतालों से। अख़बार फिर चटपटे हो गये हैं। बलात्कार, छुरेबाजी, छेडछाड, दंगे, कत्ल, आमरण अनशन, हवाहरण अहा! लगता है कि हां, कुछ हो रहा है। समर्थिग रियलि जो है सो हैपनिंग। कहीं सादगी से सैंकडों बोतल शराब इकट्ठा की जा रही है, कहीं हवाईजहाज रुकवाकर ट्रान्जिस्टर खरीदे जा रहे है। ग्लेमर और हास्यरस की कमी भारत का पुराना रोग है। इस डिफिशिएन्सी के लिए विटामिन राजनारायण के केपसूल बाजार में

आ गये हैं। संविधान में धड़ाधड़ काट-फांस हो रही है। दिल्लीवासी एक मित्र ने लिखा है कि आई. पी. सी. में एक नयी दफा जुड़ गयी है। दफा चरणसिंह। ऐ भाई जरा देख के चलो। वकीलगण ध्यान दें इस दफा पर। अब उन्हें कहां फुर्सत ! आयोगों ने उनके भाव बढ़ा दिये है। हर कोई चार-चार मुशी लिये दौड़ रहा है। लपतर-सपतर। मेरे नगर के भूतपूर्व नगरपालिकाध्यक्ष इस गम में बीमार पड़ गये कि उन्हें अभी तक कोई साला गिरफ्तार करने नहीं आया। मुट्ठी गरम करने के बावजूद। सी. बी. आइ. के इस पक्षपात ने उनकी इज्जत का भाजीपाला कर दिया। जब नहीं सहा गया तो एक दिन पहुंच गये अदालत—के हमारी अग्रिम जमानत कर दो। माई लॉर्ड ने पूछा—किस खुशी में ? तो बोले—जनाब ! हमारी भी कोई इज्जत है। तीस साल से कांग्रेस में हैं। यह क्या कोई कम कारण है ?

तो ये हाल हैं सखि ! और इस सबसे अखबारवाले बहुत खुश है। वे दीवाली पर बड़े-बड़े 'विज्ञापन विशेषांक' निकालेंगे, जिनमें कुछ रचनाएं भी होंगी। रचनाओं के लिए आजकल छोटे लेखक बड़े संपादकों की और छोटे सम्पादक बड़े लेखकों की दाढ़ी इत्यादि में हाथ डाल रहे हैं। यह क्रम चिरकाल से चला आ रहा है। हर लेखक सम्पादक का 'प्रियभाई' होता है। बस इतना काफी है। यह 'प्रियभाईत्व' बना रहे, इसके लिए कुछ अखबारों की ओर से कुछ लेखकों को कुछ समय बाद कुछ 'ठठलम् गुठलीयम्' भी मिलेगा। इसे पहले सभ्यतावश 'पत्र पुष्प' कहा जाता था। आजकल लेखक फूल-पत्ते खाकर गुजारा नहीं करते। बड़े लेखक तो हर्गिज नहीं। वे हनुमानजी के फादर को पहचानने लगे हैं। इसलिए आजकल इमर्जेन्सी के 'रांडा रोवणा' में व्यस्त हैं। प्रकाशकों ने नाक में दमादम कर रखा है। मेरे पड़ोस में एक कुख्यात लेखक रहते हैं। वे आजकल एक पुस्तक लिख रहे है। पुस्तक का शीर्षक है—'आफतकाल और चिरंजीलाल'। चिरंजीलाल हमारे कस्बे का गुड़ का व्यापारी है। दो साल पहले वह

सिर्फ व्यापारी था। अब स्वतंत्रता सेनानी भी है। उसी के अनुरोध पर यह अनुष्ठान हो रहा है। लेखक का अनुमान है कि पुस्तक छपने पर वह कम से कम कुछ दिनो के लिए तो स्वर्गीय हो ही जाएगा। वह दीवाली को स्थायी करने के चक्कर मे है। इस निमित्त वह 'स्टेचू ऑफ लिबर्टी' में घुसा जा रहा है। वहां 'प्ले बॉय' की पूरी फाइल सुरक्षित है। इस लेखक का अतिनिकट भविष्य उज्ज्वल है।

टसुए मत बहा सुनयने। इधर-उधर देख। शायद कोई मनचला सपना, कोई आशा आधार तुझे देखकर आंख मार ही दे! आजकल अपने सिवाय सबकी चांदी है। दो नवरियो से दस नंवरियों तक सब फिर अपनी-अपनी लांग टाइट करके मैदान में आ गये है। जमाखोरों और कालावजारियों के चंदो और विज्ञापनो से क्रान्तिकारी पत्रिकाएं फिर चल पड़ेंगी। व्यवस्था की टाट पर धड़ाधड़ जूते बरसाये जायेंगे—बशर्ते सेठजी विज्ञापन और पइसे टाइम पर देते रहें।

और उधर देख भद्रे! बायी तरफ डेढ चावल से खिचडी बनाने का प्रयोग चल ही रहा है। सिर्फ चावल से खिचडी बनने की बात पर आश्चर्य मत कर। दाल भी है। और खूब है। सफेद और पीली। बल्कि दाल ही दाल है। हालांकि चावल की सोहवत मे गल नही पा रही यही दिक्कत है। यही प्रयोग है। महानता ढोते-ढोते कइयो की कूबड़ निकल आयी है। पता नही वे किस करवट बैठेंगे।

खैर सखि! अपने को तो यह सोचना है कि दीवाली आ गयी। चल, इस दीवाल के बारे में सोचें। इसकी लिपाई-पुताई के बारे मे सोचें। वैसे मैं लीपापोती के पक्ष में नही हू। न यह दीवाल ही इस काबिल है। जो हमारे सामने है। और रास्ता रोक रही है। पर यह सिर्फ दिखने मे मजबूत है। इसकी जड़े खोखली हो चुकी हैं। किसी दिन कसकर एक लात मार दी जाय तो भरभराकर गिर पड़ेगी। लक्ष्मी चंचला है। उसे अधिक समय तक कैद मे रखना असंभव है।

—1978

□□

दादुर कथा-77

बरसात का मौसम आ गया। दादुर वक्ता हो गये। उनकी सुनने के अलावा कोई चारा नहीं है। सीनियोरिटी के हिसाब से उनमें बोलने के घंटे बंट गये। पांच साल हम बोलें तुम सुनो। फिर पांच साल तुम बोलना हम सुनेंगे। जब हम बोलें तुम बीच में जय-जयकार करना। कहना, लाठी गोली खायेंगे, दादुरजी को लायेंगे। इससे ऐसा लगता है जैसे जहान् का मरना-जीना दादुरजी पर ही निर्भर है। जरा ठीक रहता है।

जब आंख खोली मात्र एक बिन्दु और दो टांगें थे। इधर-उधर फुदकते फिरते थे। खुली हवा में आ जाने की कुव्वत नहीं थी। और अब यह आलम है कि बड़े-बड़े पेट निकल आये हैं। इधर से उधर मुड़ने में भी दो-तीन मिनट लगते हैं। इससे सारी बात ही बदल गयी। पेट क्या बढ़ा, सुर बदल गया। जिसे जहान् समझे थे वह कूआ निकला और वह भी छोटा पड़ने लगा। किनारे पर काई पहले भी थी, अब और हो गयी। पर काई अब वजन नहीं सारती। फुदककर किनारे जाते हैं कि धप् से

पेट के बल फिर पानी में गिर पड़ते है। इस पर कहीं से खबर आती है कि फलां दादुर गर्भवान् हो गया। उसके गर्भ में एक और बड़े पेटवाला दादुर पल रहा है। इस खबर से कूएं में हलचल मच जाती है। तू तू-मैं मैं और लाठी-गोली खायेंगे वगैरह शुरू हो जाता है। और आखिर तथा-कथित सर्वसम्मति से यह हल निकाला जाता है कि इसके लिए एक-दूसरे की मां को कोसना जरूरी है—जो इत्तिफाक से एक ही है। कुछ लोगों का ख्याल है कि यह सब उन्होंने इन्सानों से सीखा है। ऐसा हो या न हो—दोनों स्थितियों में किनारे बैठी बूढ़ी दादुरनी गालियां खाती है।

अब मेंढकों को किसी बड़े गुलाम अली खां ने संगीत तो सिखाया नहीं। टर्राने में काहे की एकतानता ? आलाप में ही बखिया उड़ गयी। कोई हज के रास्ते में थकी बिल्ली की तरह खरज लगा रहा है। कोई मंजन बेचनेवाले की अदा में पंचम। जो क्रान्ति करनेवाले थे वे दुविधा में पड़ गये हैं। क्योंकि सुविधा में पड़ गये हैं।

इसी पसमंजर में एक दिन एक बूढ़े ने ऊपर से कूएं में एक तराजू फेंकी। तराजू के एक पलड़े में कई सारे वादे-आश्वासन-घोषणापत्र-कसमें, शपथपत्र इत्यादि रखे थे। इतिहास के तकाजे और भविष्य की चिन्ताएं भी। दूसरा पलड़ा खाली था और उसमें उन सभी दादुरों को सवार होने का अंतर्राष्ट्रीय आदेश दिया गया था। आदेश भी क्या, धमकी। कि सालो ! चुपचाप चढ़ जाओ वरना गांववालों को इकट्ठा करके कूएं का सारा पानी बाहर निकलवा देंगे। या कूएं में ब्लीचिंग पाउडर डलवा देंगे।

दादुरों में आतंक छा गया। चार पलड़े में चढ़ें तो छह कूदें। जो कूदें वे फिर चढ़ें और जो चढ़ें वे फिर कूदें। फिर तू तू-मैं मैं थुक्काफजीती, लाठी-गोली खायेंगे इत्यादि। यह उस पर इसलिए नाराज कि उसने इसे छू दिया। साले ! हमें छू दिया ? अब हमारी जगह देखना, हम जरा नहाकर आते हैं। तो वह इस पर इसलिए नाराज कि तुम कैसे

फुदकते हो ? इतने बड़े हो गये अभी तक फुदकना भी नहीं आता ? सिर पर ही चढ़ गये ? पेट पर लात मारना चाहते थे ? तुम हमारे पेट पर एक लात मारोगे तो हम दो मारेंगे। दूसरों से भी पिटवायेंगे। बोलो रे बोलो—लाठी-गोली खायेंगेऽऽ!! शाबाश! फिर अमुक जी तमुकजी पर इसलिए गरम कि हमने चार जनों की जगह रोकी थी, इसमें आप कैसे आ गये पांच जने लेकर ? क्या आप जानते नहीं हमें ? आपको पता होना चाहिए कि हम ही थे वे जिन्होंने टर्रा-टर्राकर मम्मी का जीना हराम कर दिया था। तमुकजी अमुकजी से कह रहे हैं—कैसी बातें कर रहे हैं आप ? इतने वर्षों से हम कूएं में हैं, इतिहास गवाह है....कि आपको हमने इतनी छूट दे रखी है इसलिए आप बदतमीज़ी से बात कर रहे हैं। अब हमारे पांच नहीं, आठ आयेंगे। आप उधर सरककर तसल्ली कीजिये। हम अपनी-अपनी निकर पीछे फेंक आये हैं। हमारी निष्ठा पर कोई संदेह नहीं कर सकता।

उस दिन कूएं के अखबार में दादुरों के महान-जवान कुलपति का फोटो छपा। वह बत्तीसी दिखा रहा था। नीचे लिखा था कुलपतिजी दादुर लोक के आन्तरिक संकट से घोर दुखी और चिन्तित। माने कि वाह !

बूढ़े ने रस्सी को झटका दिया। खींचें ? पलड़ा हल्का लगा। तो नहीं हुए सवार ? तो अब ये मेरी बात नहीं मानेंगे ? तो आवाज लगाऊं गांववालों को ? इकट्ठा करूं ? उसने कूए में झांककर देखा कि माजरा क्या है ? इस चक्कर में उसका चेहरा कूए में गिर पड़ा। मेढ़कों की टर्राहट और फुदकन में थरथराता निरीह चेहरा बूढ़े को मुंह चिढ़ा रहा था।

कूए की सफ़ाई के लिए, उसमें मछलियां डालने और मछलियों की जगह मेढकों के बच्चे-अंडे डाल देने का आइडिया गांववालों को किसने दिया था ? जिस चेहरे ने मेढकों को मेंढ़कों से लड़ाकर नष्ट कर देने की बात सोची थी उसी का चेहरा उन्हीं मेढ़कों द्वारा चीथा जा रहा था।

क्या उसकी नीयत अब गांववाले समझ नहीं जायेंगे ? बगैर चेहरा वह कैसे-कहा जायेगा ?

कूए के पास ही एक बच्चा बकरिया चरा रहा था । बूढ़े की यह हालत देखकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा ।

□□

कथा-1

एक था ठाकुर। और एक था नाई। ठाकुर तो ठाकुर। रौबदार मूंछें और जिद्दी खोपड़ी। न दांये देखे न बांए। उठाए और दे मारे। और नाई की क्या बात! हाथी के आगे चींटी की बिसात। पर दोनों में खूब तालमेल। जहां ठाकुर जाता नाई को भी साथ ले जाता। ठाकुर चुप रहता तो नाई बोलता। ठाकुर बोलता तो नाई हुंकारे का टेका लगाता।

तो एक समय की बात। ठाकुर को जाना था पड़ौस के रावले में। उसने बुलाया नाई को जिसका नाम था गोम्या। दोनों ने ऊंट पर पलाण की और चल भई।

चलते-चलते रात हो गयी। एक पेड़ के नीचे डेरा किया। नाई ने जमीन साफ करके ठाकुर का बिस्तरा लगाया और उन्हें पधराकर उंगलियों से बाजू की जमीन खोदने-खुरचने लगा। ठाकुर ने पूछा—गोम्या! ये क्या कर रहा है रे?

नाई बोला—दाता ! अपने सोने का जुगाड़ कर रहा हूं। आपकी बराबरी में कैसे सो जाऊं ? कहां आप कहां मैं !

ठाकुर ने डपटा—बस कर। बिछा ले यहीं जमीन पर कम्बल, और पौढ़ जा।

सो लेट गया नाई। अब तारों भरी रात। बैसाख की मस्त-मदिर हवा। आकाश में नवमी का चांद ! झूमते हुए दरख्त के पत्ते, सफर की थकान और सख्त बिस्तर ! नींद न ठाकुर को आये न नाई को।

एक पहर हुए ठाकुर बोला—गोम्या !

—होकम !

—सो गया ?

—नहीं होकम !

—क्यों ? नींद नहीं आती ? तुझे कौनसी रानी से पांव दबवाने हैं ?

—सोच रहा हूं होकम !

—क्या ?

—के नदी में कितना पानी होता है ! खूब ! गच्च ! और वो पानी हड़हड़ करता आता है एक तरफ से और चला जाता है दूसरी तरफ ! इसका मतलब क्या ? उधर से कोई धकाता है या इधर से कोई खींचता है।

ठाकुर बोला—सो जा चुपचाप। अणूती बातें नहीं सोचनी।

नींद लेकिन किसे आती ?

दूसरे पहर ठाकुर ने फिर हेला किया—गोम्या ए !

—होकम !

—सो गया ?

—नहीं होकम।

—क्यू रे ? तुझे कौन पंखा झलनेवाली चाहिए ?

—सोच रहा हूं होकम !

—क्या ?

—के ऊंट....खाता तो लम्बा-लम्बा है और हगता गोल-गोल है, तो इसका मतलब क्या है ? उसके अन्दर फूस-तूस, रड़क-भड़क के लड्डू कौन बांधता है बैठा-बैठा ?

ठाकुर ने डपटा—सो जा चुपचाप। अणूती बातें नहीं सोचनी।

लेकिन उफ ! नींद कहां ?

तीसरे पहर ठाकुर ने फिर हेला किया—गोम्याए !

—होकम !

—सो गया ?

—नहीं होकम।

—क्यू रे ? तेरे को कौन राजपाट के सपने चाहिए ?

—सोचता हूं होकम।

—क्या ?

—के मेरी तो मैं उठा लूंगा आपकी कौन उठाएगा ?

—क्या उठाएगा ?

—लादी !

ठाकुर पूछ सकता था क्यू। पर उसने नहीं पूछा। उठकर बैठ गया और फटी-फटी नजरों से चारों तरफ भोर का झाझरका देखने लगा।

दोनों के ऊंट खुले रह गये थे। और भाग गये थे। लादी पास-पास पड़ी रह गयी थी। □□

कथा-2

एक था नाजी श्रौर एक था हाजी। दोनो पड़ोसी। दोनो के बीच एक दीवाल। दोनो की दुनिया के बीच सिर्फ एक झीना पर्दा। लेकिन नाजी तो बादशा का खासम खास—श्रौर हाजी एक मामूली घसियारा।

श्रव नाजी की एक आदत। सुबह-सवेरे श्रागन मे खड़े होकर बोलना—खुदा की खुदाई को कोई नही जानता।

हाजी सुना किया, सुना किया फिर एक रोज तड़ से बोल पड़ा—मै जानता हूं।

उधर से हस्बमामूल नाजी ने बाग दी—खुदा की खुदाई को....के इधर से आवाज उठी—मै जानता हू।

श्रव दोनो बार किसी ने पत्थर सा जवाब मारा तो नाजी ने इधर-उधर देखा। पातरी की, कि श्रावाज किधर से श्रायी। कूद पड़ा हाजी के दालान में।

जिद्दमजिद्दा। बद ले शर्त। हजार-हजार मोहरो की। मजूर। मजूर।

दोनों फैसला कराने पहुचे बाश्शा के पास।

तो बाश्शा ने सुनी दोनों की और हाजी को बुलाके समझाया के क्यू हजार मोहरें खोता है, तू हार जाएगा। खुदा की खुदाई को सचमुच कोई नही जानता। मैं खुद भी नही जानता।

—लेकिन मैं जानता हू। हाजी बोला ढीठता से।

—तो बता। गरजे बाश्शा।

—जहापनाह! बोला हाजी....के किले की फ़सील के उस तरफ जो जमना नदी बहती है, वो किसने खुदाई? कोई अमला, कोई पटवारी, कोई जरीब-पैमाइश, कोई साखी-शिनाख्त, कोई हिसाब-इन्दराज कोई भी, कैसा भी सबूत कही मिल जाए कि आपके बाप ने या उनके बाप ने या उनके बाप के बाप ने या उनके बाप के बाप के बाप मरहूम ने खुदाई हो तो कोई बताये हुजूर! मैं जानता हू। ये खुदा ने खुदाई है। ये खुदा की खुदाई है।

दरबारियो की वाह वाह और पर्दानशीनों की अश अश से माहौल गूज उठा।

नाजी से हजार मोहरें जभी की जभी रखवा ली गयी और हाजी को गिनवा दी गयी।

इन्साफ बाश्शा का। पास अगले वक्तों का।

अब नाजी कुढ़ा करे और सोचा करे तरकीब हाजी को फँसाने की। न खाने की सुध न पीने की। न औलाद की परवा न बीवी की। आखिर एक दिन सूझी एक काट और फजर मे खांसकर-खखारकर, आंगन को पार कर, दीवार पर चढ़कर चिल्लाया नाजी—मेरे मन मे क्या है ये कोई नही जानता।

सब चुप। पत्ता भी नही खड़का।

नाजी का दिल बल्लियो-बल्लियों। दूसरे दिन-तीसरे दिन। मेरे मन मे क्या है....चौथे दिन पार से आवाज आयी—मैं जानता हू।

जिद्दमजिद्दा ! बद ले शर्त । हजार-हजार मोहरो की । मंजूर ।
मजूर ।

तो हाजी और नाजी दोनो फैसला कराने पहुंचे बाश्शा के पास । बाश्शा ने सुनी और हाजी को पास बुलाकर कान मे कही कि पिछली बार तो तैंने बात बना दी थी, पर इस बार तू जरूर हार जाएगा । ऐसे के तू कहेगा पेडा तो वो कहेगा लड्डू । तू कहेगा हाथी तो वो कहेगा बिल्ली । क्यूं गवाता है हजार मोहरें । राजीपा करले ।

हाजी तो हाजी । क्यों माने ?

बाश्शा ने फिर कही के देख उसके मन में क्या है, मैं खुद भी नही जानता । जो बात बाश्शा नही जानता वो रियाया कैसे जान सकती है ? तू हमसे ज्यादे अकलमद है ?

पर हाजी ने पहले मानी थी जो अब मानता ?

अच्छा तो बता ..इसके दिल में क्या है ? बाश्शा ने कड़क कर पूछा ।

तब हाजी यू बोला के हजूर । मेरे और इसके राजनैतिक मतभेद हो सकते हैं, पर ये बात तो मुझे भी माननी पड़ेगी कि ये बहुत पाक साफ़ नमाजी, अल्लावाला आदमी है । मैं इसकी कदर करता हूं । इसमे लाख ऐब हों पर इसकी देशभक्ति और वफादारी और जमीर पर दुश्मन भी उंगली नही उठा सकता । ये दिन रात यही सोचता रहता है कि अल्लाताला ने बाश्शा हुजूर को सोना-चादी, घोड़ा-बग्घी, लाव-लश्कर, इल्म-हुनर, राजपाट, जमीन-जायदाद, हाकिम-अमला, सेहत-सूरत-सीरत, सब बख्शा....सब दिया....एक औलाद का सुख नही दिया....तो ये रोज इसी की दुआ करता रहता है कि कब हमारी मलिका सलामत की गोद हरी हो....सल्तनत को युवराज मिलें, नौबत बजें, बधाइयां गवें, जश्न हो, जलवा हो....चरागां हो....युवराज गद्दीनशीन हों, साहवे आलम साहवे जहां बनें और मैं नाचूं....नाचूं खूब नाचूं....बस ये हमेशा यही सोचता रहता है....। और इस वक्त भी इसके मन मे यही है । न हो तो इससे खुद से पूछ लीजिए ।

अब नाजी की सूरत देखने लायक थी ।

□□

एक आलूचनात्मक लेख

समकालीन कविता के नये तेवर

[है यह तीन अत्यंत साधारण कविता पुस्तकों की समीक्षा, पर पुस्तकों के बारे में कुछ भी कहने से पहले मैं काफ़ी बकवास करूंगा, जो आपको पढ़ना पड़ेगी—]

साइमन फिलिप्स ने रोजो डगलस को अपने एक पत्र में लिखा था कि मैं चार्ल्स शेरीन के उस कथन से असहमत हूं जो उसने आलूवादियों के विरुद्ध दिया था। साइमन की उपरोक्त स्थापना से असहमत नहीं होते हुए भी बीसवीं सदी के प्रख्यात आलूवादी ए. जी. बटलर ने जो उत्तर दिया था वह युक्तियुक्त है। यद्यपि मैं ए. जी. बटलर के इस कथन से पूरी तरह सहमत नहीं हूं कि वे वादी नहीं करते, क्योंकि जिस समय साइमन फिलिप्स आलूवादियों पर वादी करने का आरोप लगा रहे होते हैं वह 'विशिष्ट परिस्थितियों में कहना' नहीं भूलते। क्योंकि बहुत कुछ इस पर भी निर्भर करता है कि वे उबले हुए हैं या छीले हुए। यदि हम परंपरागत

सौन्दर्य शास्त्रीय विश्लेषण को छोड़ भी दें तो भी उनका जीरे या प्याज लहसुन में छोंका जाना दीगर अनुभूति का विषय है और दोनों ही स्थितियों में वह समसामयिक यथार्थ का मूल सरोकार बना रह सकता है। अपने यहां के सन्दर्भ में इस कथन की सत्यता नमोनारायण की कविता से हो सकती है।

एक ओर जब पूंजीवादी-साम्राज्यवादी-आंतकवादी-सम्प्रदायवादी विघटनवादी, पुनरुत्थानवादी-प्रतिक्रियावादी शक्तियों की घुसपैठ आलूवाद से लेकर आलू के खेतों तक पहुंचती जा रही है और नयी तथा त्वरित फसलों के आगमन के दवाव तथा तनाव साम्प्रतिक कविता में मुखर हो रहे हैं, यह कम भयानक तथा रोचक नहीं कि फॉर्म और टेक्स्चर को लेकर इधर कुछ व्यावसायिक पत्रिकाएं 'फर्रुखाबाद स्कूल' की बात नये सिरे से उठा रही हैं। अहमदाबाद गुट ने अपनी पत्रिका 'आलू' में इनकी अच्छी खबर ली है। जैसा कि प्रसिद्ध तत्ववादी दार्शनिक और मेढ़क-शास्त्री पोटेटोवॉस्की ने अपनी एक समीक्षा में कहा था-'साहित्य सिर्फ गंध या स्पर्श ही नहीं, स्वाद भी देता है' तो उनका इशारा सम्भवतः उसी प्रवृत्ति की ओर था जो नमोनारायण के अतिरिक्त प्रलय, लक्ष्मण जोशी और असहाय की कविता में दिखाई देती है। हमारा पूरा सामाजिक परिदृश्य उन छिलकों से भरा है जो आलू के होकर भी सूख चुकने के कारण आलू के नहीं लगते और उनका कण्टेण्ट हमें एक विकृत किस्म का 'ऑर्गेनिक' भय और भ्रम प्रदान करता है।

इसी प्रसंग में डा० वेघरसिंह के उस बयान का उल्लेख भी अनिवार्य है जिसमें उन्होंने 'आयातित मूर्खताओं का अंबार' कहकर आलू की अंतर्राष्ट्रीय गरिमा को चुनौती दी थी और इसे स्थूलता का कारण बताकर अवरुद्ध करने का प्रयास किया था।

नमोनारायण आठवें दशक के पाठ्य भाग की तीसरी [illegible] महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। गाय पर एक निबंध, नेता पर एक [illegible]

की गंदी नालियों पर स्थानीय समाचार पत्र के सम्पादक के नाम एक पत्र के अतिरिक्त एक शोक प्रस्ताव पर हस्ताक्षर के रूप में अब तक उनका जो कृतित्व प्रकाश में आ चुका है वह न केवल एक परम संभावनावान रचनाकार के घटनापूर्ण अभ्युदय का प्रमाण है अपितु हिन्दी की आलूवादी दृष्टि से भरवाँ भविष्य का खस्ता संकेत है। अपने प्रथम काव्य संकलन 'आलू की नाक' में एक स्थान पर वह कहते हैं—

"पीला कठोर कच्च गूदा
बच्चा खाता है कच्चा
क्या तुम उसे जानते हो ?
वह हँस रहा है।
जानते हो तो लिखो
उबालकर छिलका उतारने वाले
संत्रास्त लिसफिसेपन से अपरिचित
उसकी निश्चिंत मासूम
हँसी का अर्थ ?"

यहां एक सघन और संश्लिष्ट यथार्थ को भाषा में मूर्त और उपलब्ध किया गया है। यह मात्र भाषिक चमत्कार नहीं जिसके लिए चनावादी समीक्षक हरेछोड़ वर्मा ने सातवें दशक में नवांकुरों की खूब ले-दे की और उन पर कोस्टारिन फोण्डा का प्रभाव सिद्ध करने में ऐड़ी चोटी का जोर लगा दिया। यह हमारे समय की संपूर्ण वाग्मिता और मनुष्य की अश्वत्थिका का प्रत्यारोपित फोटोजिनिक वर्णन है जिसमें से गुजरकर नमोनारायण सत्य की लपड़धोंधियत को सिद्ध कर पाये हैं।

क्योंकि प्रश्न यह है कि भूमिगत फलन भी इतना बुरा नहीं कि 'छोलाबोध' का एक पूरा अंक उनकी छीछालेदरियत और उपरिफलित रचनाओं (जिनके बारे में ईडियट का मत था कि वे सूखी मछली के पृष्ठ-भाग से अधिक महत्वपूर्ण नहीं) पर खर्च कर दिया जाये। और यह किस

राजनैतिक दृष्टि व समझ का परिचायक है, इसे भी सब जानते हैं। कहना न होगा कि जैसा कि एक भिन्न संदर्भ में आचार्य कंदर्प ने पल्लवमणि की काव्यतितीक्षा को 'परदुखाय मायाफोड़त्व एस्प्रोयाचिका:' कहकर अभिहित किया था, इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि आलू के भजन-भोजन से यहां कोई जनवादिता नहीं।

प्रलय और लक्ष्मणजोशी एक लम्बे समय तक चनावादियों के खेमे में रहकर हमारे पक्ष में आये हैं। उनकी भी किंचित प्रशंसा अनिवार्य है, किन्तु नायकत्व सौंपना अभीष्ट नहीं। प्रलय ने इलाहाबाद सम्मेलन में हुरदंगड़ वर्मा की अटैची उठाकर कार में रख देने से सार्वजनिक रूप में इकार कर जिस विद्रोही दृष्टि और स्वच्छंदतागामी तेजस् का परिचय दिया था, वह क्रांतिकारियों की गरिमा के सर्वथा अनुकूल था। मेरा यह आशय कदापि नहीं कि प्रलय क्रांतिकारी हैं, उल्टे कुछ अर्थों में उन्हें प्रतिक्रांतिकारी कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए उनका लंगर छाप बीड़ी छोड़कर चार्म्स पीने लगना और गर्मी के मौसम में गर्मी होने की शिकायत करना। इस तथ्य की छानबीन होनी चाहिए कि वह अपने भोजन में आलू की कितनी मात्रा का प्रयोग प्रतिदिन करते हैं?—यदि करते भी हैं तो—क्योंकि मुझे संदेह है—और उसके निश्चित आधार हैं। अस्तु। अभी इस नव्यबूर्जुआ आचरण का मुखर प्रभाव उनकी कविता पर प्रकट नहीं, किन्तु भविष्य की रचनार्गाभिता के इससे अछूता न रह पाने की आशंका से इंकार नहीं किया जा सकता। अतः उद्धरण अभीष्ट नहीं।

लक्ष्मण जोशी की फक्कड़ता और अक्खड़ता एक लंबे समय से उन्हें दोनों खेमों में चर्चित रखे हुए है। उन्होंने अपना काव्य संकलन 'सड़े हुए आलुओं' को समर्पित किया है। न सिर्फ पुस्तक का कवर सड़े हुए आलू जैसा है वरन् उसकी कविताओं से भी सड़े आलुओं की गंध आती है। इस दृष्टि से उन्हें हिन्दी के पहले संभावित नोबल पुरस्कार विजेता के रूप

में गिना जा सकता है क्योंकि सार्त्र का यह कथन स्मरणीय है कि नोबल पुरस्कार का मूल्य एक आलू के बोरे से अधिक नहीं। और अब तक वे सड़ भी चुके हों तो क्या आश्चर्य ?

असहाय न तो किसी विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष हैं, न आई ए एस, न किसी बड़े प्रकाशन संस्थान में, न दूतावास में। ऐसे व्यक्ति से क्या अपेक्षा की जाये ?

इनके अतिरिक्त दिग्विजय आलू, टिकियाबोध, शिखर क्रांति वेफर्स, व्यंकट जोशी बटालवी, अहमद नदीम रतालू और भरवांरतन भी समकालीन काव्य संसार में अपनी पहचान बनाने का प्रयास कर रहे हैं। सुधा चिप्स भी अच्छा लिख रही हैं। कुल मिलाकर आलूवादी कविता से बहुत आशाएं हैं।

(प्रिय पाठक ! यदि आप अब तक पन्ना नहीं पलट चुके हैं तो दांत तो जरूर भींच चुके होंगे। इस वक्त मैं जो आपके सामने पड़ जाऊं तो आप मेरा भुरता (या टिकिया ?) बना डालें। पर क्या किया जाय ! आप तो यह सब एक दिन भुगत रहे हैं, रचनाकार हर रोज।) □□

गायब होने से पहले एक निवेदन

जिस दिन गधे के सिर से सीग गायब हुए, मै वहा नही था। इस अत्यत प्रसिद्ध घटना का कोई चश्मदीद गवाह मेरे देखने मे नही आया। न किसी इतिहासकार ने इसकी कोई टीप छोडी न किसी लोक कथा सग्राहक ने इसका सदर्भ प्रकाशित किया। तो सस्मरण तो कोई गधा लिखता ही क्यो ? घटना हुई जरूर होगी किसी न किसी रूप मे, इसीलिए लोक-प्रचलित है। लेकिन गधे के आसपास की किसी जाति, प्रजाति, उपजाति में मुझे कोई ऐसा जीव नही मिला जिसके कभी सीग रहे हो। मुझे तो कितने गधे मिले, बगैर सीग वाले ही मिले। हा कुछ सिह जरूर मिले, जिनमे से एक तो गोपालसिह तक था (सोचिए कैसा सिह होगा जो गौ पालता था!) तो उसे भी सब गोपालसी कहते थे। पर यह नामों की गड़बड़ी है जिनसे मैं नही विचलित होनेवाला। यहाँ लोग अपने नाम के आगे 'मल' लगा सकते हैं, तो सीग क्यो नही लगा सकते ? हम सज्ञा में लिप्त नही होते, सख्या मे होते हैं या संस्था मे होते हैं। यही बात है। वरना बताइये 'प्रसन्न मल' का क्या मतलब ?

अब देखा जाये तो यह भी कोई इतनी बड़ी बात नहीं जिससे मैं स्वयं को प्रभावित हुआ मानूं। मेरे एक मित्र के नाना रेलवे में हैं। बुजुर्गवार बता रहे थे कि पिछले कई वर्षों से उत्तर रेलवे का एक इंजिन गायब है। वह शंटिंग करता करता पश्चिम रेलवे की तरफ निकल गया था जहां उसे पकड़कर और कामों में लगा लिया गया, ड्राइवर-खलासी दोनों रिटायर हो गये और इंजिन का अब तक कुछ पता नहीं।

इस प्रतिमान को पिछले दिनों बिहारवालों ने तोड़ा जिन्होंने शक्कर से लदी एक मालगाड़ी से एक पूरी की पूरी बोगी ही गायब कर दी।

मैं कहता हूँ कि अब भी इससे प्रभावित होने की क्या बात है? इस देश में गायब होना और करना जीवन पद्धति का एक अंग है सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक है, व्यवहारकुशलता का परिचायक है। यहां पुलिस की निगरानी में परीक्षा होती हैं और पर्चे तथा उत्तरपुस्तिकाएं गायब हो जाती है, जज साहब की नाक के नीचे अदालत से मुजरिम गायब हो जाता है, बजट की खुशबू आते ही बाजार से खाने-पीने की चीजें गायब हो जाती हैं, सशस्त्र पुलिस के घेरे से डाकू गायब हो जाते हैं, जेलर साहब एक झपकी भी नहीं ले पाते कि उम्रकैद के पराक्रमी सजायाफ्ता जेल से गायब हो जाते है, परीक्षा का मौसम आते ही बिजली गायब हो जाती है, और दूसरों की क्या कहें... विधान सभा में बहुमत सिद्ध करने की मंगलवेला के जरा ही पहले विधायक तक गायब हो जाते हैं।

किस-किस चीज से प्रभावित हुआ जाय?

कैफ़ी आज़मी ने बहुत पहले एक कथा सुनायी थी। उसका सार यह था कि एक बुढ़िया थी जिसका जवान इकलौता बेटा असाध्य पीठ दर्द कमर दर्द से पीड़ित था। डॉक्टर, वैद्य, हकीम, ओझा, तांत्रिक, सयाने चारागरों की जितनी किस्में हो सकती हैं—उसका दर्द ठीक करने में सफल नहीं हो सके थे। अंत में किसी अक्लमंद ने सलाह दी, लड़के को सरकार के पास ले जा, वह जिसकी पीठ पर हाथ रख देती है, वह चीज

बाजार में गायब हो जाती है। चीनी, गेहूं, घासलेट ऐसी-ऐसी चीजें गायब हो जाती हैं तो उसका दर्द क्या चीज है!

ठीक बात है। सरकार का जादू कोई यों ही थोड़ी प्रसिद्ध है!

और ऐसे में कुछ अक्लमंद हाजमे की गोली-चूरन बेचते हैं। मैं उन पर दया करने के सिवाय क्या कर सकता हूं? जिस देश में लोग सीमेन्ट हजम कर जाते हों, लोहे की चादरें हजम कर जाते हों, लाइसेन्स, कोटा परमिट, सड़क-तालाब-पुलिया हर चीज हजम कर जाते हों, वहां हाजमे की गोली की क्या बिसात? वे सब हजम करने के बाद भी बल्व, कीलें और एसिड खानेवाले को देखने जाते हैं तो सिर्फ प्रोत्साहन देने के लिए, कलाकार का दिल बढ़ाने के लिए, वरना क्या उन्होंने संसद सदस्य तुलमोहनराम को नहीं देखा?

अब आप देखिये, दूसरे विश्वयुद्ध में जब बंटवारा होने बैठा तो कई छोटे-छोटे देश गायब हो गये। जैसे चीन ने झपट्टा मारा तो तिब्बत गायब हो गया। सारी दुनिया को नये मानचित्र बनाने पड़े। बड़ा देश है चीन, उसके हाजमे को दुरुस्त रखने के लिए खुराक भी छोटी-मोटी नहीं चलती। हजारों वर्ग किलोमीटर भारत की जमीन अब भी उसकी दाढ़ में फंसी है। वह चाहता है हजम हो जाए, हम चाहते हैं न हो। कुछ परिस्थितियों में बदहजमी भी इच्छित चीज हो सकती है। हम अपने यहां अध्यक्षीय प्रणाली और पाकिस्तान में लोकतंत्र दोनों एक साथ चाह सकते हैं। इसाइल फिलीस्तीन विद्रोह को नहीं पचा सका। हम चाहते हैं कि उसकी यह बदहजमी बनी रहे।

और जहां तक मेरा सवाल है कोई पुरानी कथाओं की तरह मेरी तपस्या से खुश होकर मुझसे कोई भी एक वरदान मांगने को कहे तो मैं तो यही कहूंगा कि हे भगवान! इन मंत्रियों-नेताओं का, अफसरों-तांत्रिकों का, राजनीति के मदारियों का, टाटा-बिड़ला के इन नवरागियों का हाजमा बिगाड़ दे ताकि वे कम से कम इस मुल्क को तो हजम

रचना का नया नुक्का उर्फ किस्सा कितबियाकूद

यह किस्सा बहुत पुराना हो चुका कि एक दाढ़ीवाले ने एक चोटीवाली को रचनाएं लिख-लिखकर दी और इस मेन्यूफेक्चर का कालान्तर में ऐसा फ्रेक्चर हुआ कि दाढ़ीवाले ने अदालत का दरवाजा खटखटाया कि मेरे लॉर्ड, इस चोटी की रचनाकार को गूथनेवाला मैं ही हूं। बहरहाल, यह दूसरा किस्सा भी पुराना हो गया कि 'सम्पादक के अभिवादन व खेद सहित' का कलाम तकिया भर इकट्ठा होने के बाद एक रचनाकार ने अपना स्वैच्छिक लिंग परिवर्तन कर लिया और दयाराम तिवारी से दया त्रिवेदी बन गये। फिर रचना अपनी कुव्वत और नाम की दया से कुछ-कुछ कहीं-कहीं छपी। दयाराम अंकित, परिगणित और अतः धन्य हो गये। पर यह किस्सा पुराना है।

एक और पुराना किस्सा यह है कि एक सुबह काल देवता ने देखा कि भोले लेखक अपने मा-बाप को कोस रहे थे कि तुमने हमारी डिलीवरी मंदसौर या नीमच में क्यों नहीं करवायी, और चतुर लेखक पुराने ब्राह्मणों

से अपनी जन्मपत्री का दूसरा संस्करण बनवा रहे थे जिससे सिद्ध हो जाये कि वे भी कालिदास, तात्याटोपे, भगवान रजनीश और अशोक वाजपेयी के 'प्रान्त भाई' हैं। प्रकाशिक टॉर्चें लिये पीछे पीछे भागें और आप जो भी लिखें वह खूबसूरत आवरण और छतफाड़ू कीमतों में संस्करण पर संस्करण गंडेरी-सा कटता जाए।

नया किस्सा यह है कि लोग पहाड़ से अपना या अपने खानदान का ताल्लुक जोड़ने की कोशिश कर रहे है। बड़े प्रकाशकों का नया नारा है—'जहां-जहां पहाड़, वहां-वहां प्रतिभा के झाड़।' धराशायी गू से गर्वोन्नत हिमशिखरों तक पहाड़ की हर गपड़चौथ एक पुराण है जिसका प्रकाशन भारतीय साहित्य को जगमगा देता है। प्रकाशक का काम जब लालटेन से नही चलता तो वह गैस का हण्डा जलाता है। और जब उस से भी नहीं, तो पोटेशियम का तार। तार का उजाला बहुत तेज परन्तु क्षणजीवी है। कोई बात नही। है तो। उसी में चमकेंगी अपनी काली-नीली-पीली-सफेद किताबें। बल्कि कितबियाएं। बड़ी किताब तो मर्दों जैसी अक्खड़ होती है। महँगी भी। आप कितबिया की कमसिनी और मासूमियत देखिए। कोई तुलना है? कहा गोभी का फूल कहां गुलाब की कली। और सस्ती अलग से।

तो नया किस्सा यह है कि कितबिया में कूदो। पर झंझट कई है। गुलाब की कली बड़ी जल्दी मुर्झा जाती है और उसकी पत्ती-पत्ती बिखर जाती है। मैं भी हालांकि चाहता हूं कि जब मैं कोई अच्छी-सी किताब लिखूं और वह छपकर, प्रकाशित होकर चर्चित हो चुके तो पॉकेट बुक में निकले। लेकिन जब तक ऐसा नही होता क्यो न मैं पॉकेट बुक को गाली ही दूं। जब पॉकेट बुकित होऊंगा, उसके समर्थन में भी ढेरों तर्क जुटा ही लूंगा।

तो भाई! ये कहां की अक्लमंदी है कि आप रानुओं-समीरों-विक्रमों-अमिताभों में खुद होकर घुसे जा रहे हैं? आखिर आप एक

जीते-जागते मौलिक इन्सान हैं, आपका एक चेहरा है, एक पहचान है, एक ठो निष्ठा भी होगी। मुझसे देखा नहीं जाता कि रेलवे स्टेशन, बस अड्डे के बुक स्टालों पर आप सबसे नीचे दबे पड़े रहते हैं, आप पर ममीर-फमीर चढ़े रहते हैं, उनकी छाती पर सत्यकथाएं भटक रही होती है और उनसे भी ऊपर आगरा के परम आध्यात्मिक पीले प्रकाशन ताण्डव कर रहे होते हैं। कहां बना ली है आपने अपनी जगह? ग्राहक दूकानदार से कह रहा है—ये फालतू किताबें क्यों रखते हो? किसी की समझ में भी आती हैं? दूकानवाला मन ही मन माथा कूट रहा है। मान लीजिए साहित्य के किसी सर्वोदयी पाठक ने आपकी किताब खरीद भी ली, और पढ़ते-पढ़ते पन्ना मोड़कर कहीं किसी शंका के निवारण हेतु चला गया, और पीछे से 'पुरवा सुहानी' या 'बादे सबा' या और किसी वैराइटी की हवा चल गयी तो लौटकर क्या पायेगा? यही कि पुस्तक खुली है, पन्ने उखड़कर इधर-उधर उड़ रहे हैं, जिनमें से एक एक पन्ना चिड़िया भी उठाकर ले गयी है और घोंसले में बैठे अपने नवांकुरों का ज्ञानवर्धन कर रही है। क्यों साहब? जब बड़े कार्यालयों की महत्वपूर्ण फाइलें समझदार गाय खा सकती है तो हमारी कितबिया का एक ठो पन्ना चिड़िया चोंच भर क्यों नहीं ले जा सकती है?

पर नहीं। असल बात यह है कि पॉकेट बुक एक संकरी गली है। इसके उस पार फिल्म का लम्बा-चौड़ा आंगन है। और आपकी रचना पर फिल्म बन जाये—न भी बने, चर्चा ही हो जाए कि बन रही है—तो आप रातोंरात सारे सम्पादकों-प्रकाशकों को अद्भुत प्रतिभासम्पन्न नहीं लगने लगेंगे क्या? कौन नहीं चाहेगा? मुझसे ही आकर कोई कहे कि साहब, मैं आपकी अमुक कहानी पर फिल्म बनाना चाहता हूं, तो क्या मैं इन्कार कर दूंगा? हर्गिज नहीं। (ध्यान दें फिल्मवाले) मैं हर्गिज इन्कार नहीं करूंगा। पर जब तक ऐसा नहीं होता, बम्बइया फिल्मों की भर्त्सना करना मैं अपना अधिकार ही नहीं, कर्तव्य भी

समझता हूं। मेरे एक लेखक मित्र तो हर चायखाने, ढाबे, पान की दूकान, बुक स्टाल पर बातों-बातों में यह जाहिर करना जरूरी समझते है कि वे लेखक है। क्योंकि क्या पता कब, कहां, किस रूप में कोई प्रोड्यूसर मिल जाए और फुदक कर कहे—ओह ! आप अमुक साहब है ? मैं कबसे आपको ही ढूंढ रहा था। मैं आपकी कहानी पर फिल्म बनाना चाहता हूं। पहनिए पजामा और चलिए बम्बई। हो सकता है। आप ये नही कह सकते कि नही हो सकता। आदमी को हर परिस्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए।

पर अब वो जमाने तो रहे नही जब बेदी, अब्बास कहानी लिखते थे और साहिर-कैफ़ी-इन्दीवर गीत। अब तो प्रकाश मेहरा, मनोजकुमार और विजय आनन्द गीत लिखते है और कहानी लिखता है 'स्टोरी डिपार्टमेण्ट'। साहित्य पर तो हमारे यहा सिर्फ धार्मिक फिल्मे बनी है। या बंगला उपन्यासों पर। लेकिन वहां भी सीता-शकुतला ने नायलोन की साड़ियां पहनी हैं और जंगल में सौ-सौ वाद्यो के अदृश्य ऑर्केस्ट्रा पर 'जुदाई-बेवफाई-तनहाई' नुमा गीत गाये है। आप और हम क्या करेंगे वहां जाकर ?

भगवान् नही जानेवालों को और दूसरो की सफलता देखकर जलनेवालो को सद्बुद्धि दे। □□

तुम लोग

कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, शरद जोशी, भीष्म साहनी, मनोहर श्याम जोशी आदि आदि के बाद अब मेरी बारी है। मैं भी टी वी के लिए एक सीरियल लिख रहा हू। वैसे भी वर्तमान साहित्य की चदरिया मुझे काफी से ज्यादा झीनी, मैली और छोटी लगने लगी है। पत्र-पत्रिकाओं में कहानी की बजाय आजकल विज्ञापन और नये उत्पादों की गुणवत्ता, चमत्कारिता, आधुनिकता आदि के सुखद समाचार छपते है। रेडियो कबाड़खाने की चीज हो चुके हैं। पुस्तकें मध्यप्रदेश की अलमारियों में मुकीम दीमकों के अलावा आजकल खरीदता-पढ़ता कौन है ? और यह तो हम करने से रहे कि इधर एक कहानी संग्रह तैयार करें, उधर उसकी कुंजी लिख डालें और दोनों में से किसी एक को, या दोनों को कोर्स में लगवा दें ! लिहाजा मुड़-मुड़ के ना देख मुड़-मुड़ के। जो वक्त के चला है साथ मर्द है। ध्यान दीजिए—मर्द। इसलिए आपका यह बंदा आजकल टी वी के लिए एक सीरियल लिख रहा है।

कमलेश्वर-मन्नू भंडारी-भीष्म साहनी-शरद जोशी आदि को आपके सिनेमा-छौने तक कुछ या किन्ही वस्तुओं ने पहुचाया है। कोई दंत मजन या कोई साबुन अपने झागों मे इन्हें भी उठा लाया है। क्या ये झाग मुझे भी नही उठा ले जायेंगे ? सोचता हू तो मन के नेपथ्य से टिंग टाग आदि के बाद आवाज उभरती है—जरूर ! क्यों नही। स्वयंप्रकाश। सर्वोत्तम सफेदी के लिए....टिकाऊ और मजबूत....टाटा का स्वयंप्रकाश ! फिर एक इलेक्ट्रॉनिक जू ऽ ऽ ३ ऽ ऽ के बाद एक स्त्री स्वर और एक पुरुष स्वर किंचित विलम्बित तान में गाते है—'स्वयं ऽ ऽ प्रकाश !!!'

बहरहाल ! तो जो सीरियल मैं लिखने जा रहा हू वह एक हजार उन्नीस खण्डों में है। फिलहाल। यह भी सकता है। जैसे-जैसे देश मे समस्याएं बढ़ेंगी-बदलेंगी, वैसे-वैसे हम उन्हें अपने सीरियल मे स्थान देते जायेंगे। स्थिति यह भी हो सकती है कि आपका टीवी ससुर खत्म हो जाए....सीरियल ख़त्म न हो।

सीरियल को हम 'बटर ऑपेरा' कहेंगे, क्योंकि यह आपको बटर लगाएगा। लगाता रहेगा। सीरियल का नाम होगा 'तुम लोग'। जी हां....तुम ऽ ऽ लोग !!

'तुम लोग' जनता कॉलोनी के एक परिवार की कहानी है। परिवार मे एक भाषणबाज बुड्ढा है, एक निखट्टू बाप है, एक संतोषीमाता टाइप मम्मी है, दो-चार ठो बिगड़े हुए लौंडे है और कुछ बेचारी किस्म की बदसूरत बच्चियां है। इस तरह आठ-दस मेम्बर है। मा हमेशा रोटियां थेपेगी, बाप दारू पियेगा और सहगल के गाने गायेगा, भाषण-बाज बुड्ढा भाषण देगा और छोकरे-छोकरी नये-नये कपड़े पहनकर इधर-उधर मटरगश्ती करेंगे। अजी पचास किश्तो तक तो आपको पता ही नही चलेगा कि इस परिवार की आमदनी का जरिया क्या है ? अब छोकरो में जो बड़ा छोकरा है वह बेरोजगार है। गरीब घर का पढ़ा-लिखा बेटा बेरोजगार होता है तो भयानक बात होती है सारे

परिवार के लिए। वह बेचारा दिन भर चप्पल चटकाता है ग्रौर खाने बैठता है तो रोटियां गिनता है, कि कितनी खा गया। पर यह मामला तो सीरियस हो जाएगा। नहीं, हम किसी का मूड ग्रॉफ नहीं होने देंगे। हम उसे फनी बना देंगे। वह गलत अंग्रेजी बोलेगा ग्रौर अपनी मूर्खता-पूर्ण हरकतों से ग्रापको हँसायेगा। ग्राप खूब हँसिएगा। इस तरह यह भी सिद्ध हो जाएगा कि जनता कॉलोनी के बच्चे तो इस लायक होते ही नहीं कि उन्हें कोई ढंग की नौकरी मिले। कम्बख्त हिन्दुस्तान में रहकर अंग्रेजी नहीं जानते।

ग्रौर यह तो पहले ही सिद्ध हो चुका है कि गरीब इसलिए गरीब होते हैं क्योंकि वो दारू पीते हैं। जैसे बाप। अब बची समस्या बेटियों की। बड़ी बेटी एक मजेदार घटना के अ्—इतिहास साक्षी है कि फिल्मों में ऐसा ही होता ग्राया है—एक कमसिन डॉक्टर को पटा लेगी। कुछ गलतफहमी, कुछ छेड़छाड़, एक अदद मोहब्बत भरा गाना....लेकिन होगा यह कि बीच में ग्रा जाएगा समाज! जालिम जमाना! दो प्यार भरे दिलों को मिलने नहीं देने का शाश्वत पार्टटाइम जॉब करता हुग्रा। तो ग्राप क्या सोचते हैं? दोनों बालिग हैं? दोस्त के स्कूटर पर बैठकर कोर्ट जायेंगे ग्रौर शादी कर लेंगे? कॉफी हाउस में चंदा करके पार्टी दे देंगे ग्रौर मां-पिताजी से ग्राशीर्वाद मांग लेंगे? जी नहीं, ग्रापकी जिन्दगी में होता होगा ऐसा, हम तो मां-बाप की रजामंदी के बगैर शादी नहीं होने देंगे। हमारा हीरो मॉडर्न है। इक्कीसवीं सदी के दरवाजे के बाहर बरामदे में खड़ा-खड़ा सोच रहा है कि कॉलबेल बजाऊं या नहीं? अंत में निर्णय करता है कि नहीं ही बजाग्रो। बजाने में बहुत झंझट है। इसलिए अपनी पारंपरिक पद्धति से ही शादी होगी। बाकायदा एक-एक बाल की खाल निकालते हुए। ग्रौर जैसा कि 'दर्शक चाहते हैं' ससुराल. प्रेम की ठोकरें, उर्फ सविता पवार भी जरूर होगी। ग्रौर बोलिए, 'क्या चाहिए ग्रापको'?

एक बेटी और है। वह फिल्म हीरोइन बनने की असफल कोशिश करेगी। बन नहीं पायेगी। उस पर मर्डर का केस लगवा देंगे। निम्न-मध्यवर्गीय परिवारों की लड़कियों की ये हिम्मत कि वो हमारी कॉन्वेण्टी कामिनी बालाओं के सितारा भविष्य को चुनौती दें? हम उन्हें साफ़ धमकी ठोकेंगे कि खबरदार! घर से बाहर जाना है तो या तो नुक्कड़-नाटक करो, या गांव में जाकर गोबर थापो और देश को महान् बनाओ। अगर सितारा बनने की कोशिश की तो देख लो, तुम्हारा भी वही हश्र होगा जो इस लड़की का होता है। आख़िर हमारा भी कोई नैतिक दायित्व है कि नहीं?

अब रहा समाज। समाज में दो पुलिसवाले रहेंगे। दोनों के मकान—जैसी कि उनकी तनखा होती है—ठाठदार होंगे। क्योंकि दोनों बहुत सच्चरित्र, ईमानदार और साफ जवान होंगे। उनके मुंह से 'साला' तक नहीं निकलेगा। जैसा कि सचमुच नहीं निकलता। और उनके साथ दर्शकों की पूरी सहानुभूति पैदा करवाने की कोशिश की जाएगी। जो कि अपने समाज में वैसे ही काफ़ी है।

सीरियल में एक रंगीली बुढ़िया भी होगी। वह बुजुर्गी में भी सुरमा लगाएगी, रबड़ी खाएगी लेकिन यह कभी नहीं सोचेगी कि इस सबके लिए पैसा कहां से आयेगा। उसे अपनी जवान-जहान पोतियों के इधर-उधर मटरगश्ती करने पर भी कोई ऐतराज नहीं होगा। उसे कैन्सर हो जाएगा लेकिन दर्शकों की फ़र्माइश पर डॉक्टर लोगों को और बीमारी के कीटाणुओं को समझा-बुझा दिया जाएगा कि इसको मरने नहीं देना है।

सीरियल में शराबों की बुराई होगी, अवैध शराब बेचने-बिकवाने वालों से कुछ नहीं कहा जाएगा। भ्रष्टाचार की बुराई होगी, उससे सत्तातंत्र की मिलीभगत को छुआ भी नहीं जाएगा। राजीवजी का राज आ जाएगा लेकिन इन्दिरा गांधी की हत्या के बारे में कोई पात्र कभी

भी एक शब्द भी नहीं बोलेगा। उत्तर–दक्षिण के प्रेम सम्बंध दिखाए जायेंगे लेकिन उसी बटर पॉलिसी के साथ जिसका जिक्र हमने पहले किया। बगैर इस प्रश्न का कोई उत्तर दिये कि उत्तर के लोग हर दक्षिण भारतीय को 'मद्रासी' क्यों कहते हैं ? जनता कॉलोनी के झगड़े–झंझट, बदबू–गदगी, मारपीट, मच्छर–मक्खी, मकान की टपकती छत, उखड़ा फर्श, पड़ोसनों के झगड़े आदि कुछ भी दिखाकर आपको बोर नहीं किया जाएगा।

'तुम लोग' की शूटिंग धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी के सुपर्णा आश्रम में होगी और इसके लिए उन्हें कई हजार रुपये रोज किराया दिया जाएगा। पैसा कहाँ से आएगा, यह मुझसे मत पूछिए। अगली किश्त में क्या होगा, और इस किश्त से हमें क्या शिक्षा मिलती है, यह बतायेंगे फिल्म जगत के प्रसिद्ध सितारे श्री मोहन चोटी। क्योंकि वे चोटी के कलाकार जो हुए। पहले मेरा इरादा यह काम तबस्सुम से कराने का था। पर नहीं। वह तो दो चोटियों की हो जाएगी। हां, इस बात का भी ध्यान रखना पड़ेगा कि मोहन चोटी हमेशा काला चश्मा पहने रहें, ताकि उनकी आंखों में अपने ही कथन का उपहास और विरोधाभास नजर न आ सके। मेरा महत्वाकांक्षी सीरियल 'तुम लोग' लगभग तैयार है।

बस....एक स्पॉन्सर करनेवाले का इंतजार है।

आप करेंगे ? □□

नाम—स्वयप्र

जन्म—20 ज

इन्दौर

शिक्षा—मेकेनिक

मे डिप्लोम

एम. ए. (हि

पी-एच. डी.

कृतियां—मात्रा और भार
(कहानी संग्रह)

सूरज कब निकलेगा
(कहानी सग्रह)

आसमा कैसे कैसे
(कहानी सग्रह)

जलते जहाज पर
(उपन्याम)

ज्योतिरथ के मारथी
(उपन्यास)

फ़ीनिक्स (नाटक)

परमाणु भाई की दुनिया मे
(वैज्ञानिक बाल उपन्यास)

- आठवें दशक में जनवादी पत्रिका 'क्यों' का सम्पादन
- 1980 में राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित
- अनेक कहानियां देशी-विदेशी भाषाओं में अनूदित।